व्ला. इ. कुजनेत्सोव

प्रकाश

ललित विज्ञान साहित्य

प्रकाश

В. И. Кузнецов

Свет

Педагогика Москва

व्ला. इ. कुजनेत्सोव

प्रकाश

अनुवादक:
देवेंद्र प्र. वर्मा

मीर प्रकाशन मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

V. I. Kuznetsov

LIGHT

На языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित

ISBN 5-03-000306-1

विषय-सूची

प्रकाश के बारे में

पृथ्वी पर जीवन उत्पन्न हुआ और अभी तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है—यह सिर्फ सौर प्रकाश की किरणी ऊर्जा के कारण। हमारे ग्रह पर वात का आवरण सूर्य की ऊर्जा का बहुत बड़ा अंश अवशोषित कर लेता है। यदि वातावरण नहीं होता, तो दोपहर दिन में सूर्य से धरातल के प्रति वर्ग सेंटीमीटर पर प्रति मिनट 8.37 जूल ऊर्जा आपतित होती। इस राशि (8.37 $J/cm.^2$ min) को **सौर स्थिरांक** कहते हैं। यह वातावरण के पार उड़ते राकेटों के उपकरणों की सहायता से ली गयी नापों द्वारा निर्धारित किया गया है।

हिसाब लगाया जा सकता है कि प्रकाश हमारे ग्रह पर प्रति सेकेंड इतनी ऊर्जा लाता है, जितनी ऊर्जा 4 करोड़ टन पथरकोयला जलने से मुक्त होती है।

आदिम मानव का अलाव, मशीनों के चलित्रों (मोटरों) में जलने वाला पेट्रोल, अंतरिक्ष-यानों का ईंधन—यह सब प्रकाशीय ऊर्जा ही है, जो किसी जमाने में पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं द्वारा संचित हुई थी। यदि सौर ऊर्जा का प्रवाह रुक जाये, तो वातावरण की ऑक्सीजन और नाइट्रोजन द्रव में परिणत होकर धरातल पर बरस जायेंगी; जमकर ठोस हुई वातावरणी गैसों का सात मीटर मोटा कवच पृथ्वी को आच्छादित कर लेगा। इस बर्फीली मरुभूमि में सिर्फ कभी-कभी द्रव हीलियम से भरे छोटे-मोटे गड्ढे नजर आयेंगे।

प्रकाश पृथ्वी पर सिर्फ ऊर्जा ही नहीं लाता। ज्योति-प्रवाह के

कारण ही हम परिवेशी दुनिया का अनुभव करते हैं, उसका बोध करते हैं। प्रकाश की किरणें हमें निकट और दूर की वस्तुओं की पारस्परिक स्थिति, उनका रंग और आकार बताती हैं।

प्रकाशिकीय उपकरणों द्वारा तीव्र किया गया प्रकाश पैमाने के अनुसार दो विपरीत प्रकार की दुनियाओं को दिखाता है : अंतरिक्षी दुनिया जिसमें विराट विमीयता तथा विशाल आकारों का राज्य होता है और सूक्ष्मदर्शी दुनिया जिसमें नंगी आंखों के लिए अदृश्य जीवों का राज्य होता है।

जब इटली के महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलीली ने अपने हाथों से बनायी दूरबीन को आकाश की ओर निर्दिष्ट किया, तो उन्होंने इतनी बड़ी दुनिया देखी जिसकी तुलना नहीं की जा सकती थी। दूरबीन की सहायता से जिस ग्रह बृहस्पति का वे प्रेक्षण कर रहे थे, उसके उपग्रहों की गति की तुलना ग्रहों की गति के साथ करके वे विश्व की बनावट के बारे में कोपेरनिकस के विचारों की पुष्टि व्यावहारिक तौर पर कर सके, आकाश-गंगा में अलग-अलग कई तारे भी देख सके।

अब तो इतनी अच्छी दूरबीनें बन चुकी हैं कि नंगी आंखों के लिए अस्पष्ट तारों की तुलना में दस लाख गुना कम चमकीले तारे भी साफ-साफ देखे जा सकते हैं। प्रकाशीय प्रवाह की प्रकृति के आधार पर यह पता लगाने की विधियां ज्ञात हो चुकी हैं कि उसे उत्सर्जित करने वाला पिंड किन रसायनिक तत्त्वों से बना है, उसका तापक्रम कितना है, उसकी गति और उसका चुंबकीय क्षेत्र कैसे हैं।

इसका मतलब है कि तारे के प्रकाश में उसकी संरचना, अंतरिक्षी द्रव्य के गठन तथा अन्य अनेक चीजों के बारे में सूचनाएं निहित रहती हैं, जिनके साथ वह (प्रकाश) सम्पर्क में आता है। दूरबीन द्वारा एकत्रित प्रकाश को उसके अलग-अलग अवयवों में विघटित करके ज्योतिर्विद प्रकाश-तरंग पर अंकित नाना प्रकार की सूचनाएं 'पढ़ने' में सफल हुए, दो रसायनिक तत्त्वों—सौर हीलियम और तारों में स्थित टेक्नी-

शियम—को उन्होंने पृथ्वी की प्रयोगशालाओं से पहले अंतरिक्ष में ढूंढ़ निकाला। इसके परिणामस्वरूप एक ध्यान देने योग्य बात मालूम हुई। पता लगा कि तारों का द्रव्य ऐसे ही परमाणुओं और अणुओं से बना है जैसे कि पृथ्वी का।

तारों के सुदूर जमघटों—आकाश-गंगाओं—से उत्सर्जित प्रकाश के गठन के विश्लेषण से एक अप्रत्याशित खोज हुई : मंदाकिनियां विशाल वेग से एक-दूसरे से दूर भागती रहती हैं, जिसका मतलब है कि हमारा ब्रह्मांड निरंतर प्रसारित हो रहा है।

गैलीली की ज्योतिर्विज्ञानी खोजों के करीब 50 वर्ष बाद हॉलैंड-वासी लेवेनहूक ने अपने बनाये हुए सूक्ष्मदर्शी में पानी की बूंद को देखा और आश्चर्यजनक सूक्ष्म जगत की खोज की।

लेवेनहूक की खोज के बाद से तीन सौ वर्ष बीत चुके हैं, प्रकाश-तरंगें नंगी आंखों के लिए अदृश्य सूक्ष्म वस्तुओं के अन्वीक्षण में अभी तक सहायता दे रही हैं। इस अवधि में वैज्ञानिकों ने जीवन के लिए बैक्टेरिया और हरे द्रव्य—क्लोरोफील—का महत्व समझा, जीवों का कोशिकीय गठन सिद्ध किया, विषाणुओं की खोज की, विज्ञान की अनेक शाखाओं को जन्म दिया जिन्हें हम बेझिझक सूक्ष्मदर्शी कह सकते हैं, जैसे कोशिका के बारे में विज्ञान—सीटोलोजी।

अंतरिक्षी और सूक्ष्म जगतों में अपनी पैठ के लिए हमें सबसे पहले प्रकाश का ही कृतज्ञ होना चाहिए। मानवीय कार्यकलापों के अन्य क्षेत्रों में भी प्रकाश-किरणों का महत्व कुछ कम नहीं है। प्रकाशिकीय उपकरण ऊंचाई पर उड़ते विमान में लगे होकर भी समुद्र की सतह पर उँड़ेले गये पेट्रोल की किरण का पता लगा सकते हैं। करोंजक (शल्यचिकित्सक) के हाथों में लेसर किरणें आंख की रेटीना पर जटिल आपरेशन के लिए किरणी चाकू का काम करती हैं। धातुकर्मी कारखाने में यह किरण धातु की मोटी-मोटी चादरें काटा करती है, सिलाई के कारखाने में कपड़े की कटिंग करती है। प्रकाश-किरणें खबरें प्रेषित करती हैं,

सावधानी और सूक्ष्मता से रसायनिक प्रतिक्रियाओं का संचालन करती हैं।

विज्ञान ने इन समस्याओं का हल कैसे ढूंढ़ा है, आगे चलकर इसी के बारे में बातें होंगी। लेकिन पहले इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करते हैं : प्रकाश है क्या ?

शब्द 'प्रकाश' से हम क्या द्योतित करते हैं ? यदि शुद्ध रूप में कहा जाये, तो प्रकाश विद्युचुंबकीय विकिरण को कहते हैं, जिसका आदमी की आंखें बोध कर सकती हैं। इस विकिरण के अन्तर्गत तरंगो की लम्बाइयां बहुत छोटी होती हैं और बहुत संकीर्ण अंतराल में बंधी होती हैं— 0.38 से 0.77 μm तक की सीमाओं में। भौतिकविद इस अंतराल के बाहर की लंबाइयों वाली अदृश्य विद्युचुंबकीय तरंगों को भी अक्सर प्रकाश नाम से पुकारते हैं। बात यह है कि 0.01 μm से 340 μm तरंग-लम्बाइयों वाले विकिरण अनेक स्थितियों में एक जैसा व्यवहार करते हैं।

अकादमीशियन सेर्गेई वावीलोव ने पुस्तक "आंख और सूरज" में लिखा है : "नाना प्रकार की असंख्य ऐसी संवृत्तिया हैं जिन्हें प्रकाशीय संवृत्ति की संज्ञा देनी पड़ेगी जबकि वे अदृश्य हैं"।

अदृश्य विद्युचुंबकीय तरंगों के भौतिक गुण प्रकाशीय तरंगों के गुणों के निकट हैं, यद्यपि हमारी आंखें उन्हें अनुभव नहीं करतीं।

प्रकाश के मुख्य गुणों में से एक गुण प्राचीन काल से ही ज्ञात है— प्रकाश की किरण सरल रेखा पर गमन करती है। प्रकाश-स्रोत के सामने रखे पर्दे (चित्र 1a में—पत्ते) की छाया ठीक पर्दे जैसी ही आकृति रखती है। प्रकाश का सरल रेखा पर गमन अनेक रोचक संवृत्तियों की व्याख्या करता है।

सूरज और विमान. जब विमान उड़ान शुरू करता है, उसकी छाया मैदान में भागना शुरू कर देती है। कुछ समय तक छाया की

चित्र 1a. प्रकाश-स्रोत के सामने पर्दा।

चित्र 1b, c. विमान की छाया का आकार उसकी ऊंचाई के अनुसार बदलता है।
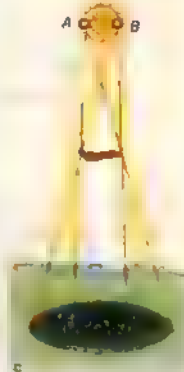
आकृति ठीक विमान जैसी रहती है, पर ऊंचाई बढ़ने पर उसकी परिरेखा अस्पष्ट होने लगती है और अंत में वह गोल धब्बे का रूप ग्रहण कर लेती है। छाया के साथ होने वाले इस परिवर्तन का कारण क्या है?

सूर्य-चकती की किनारी पर आमने-सामने के दो बिंदुओं A तथा B से चलने वाली किरणें विमान के साथ अलग-अलग कोण बनाती हैं। यदि सिर्फ ये दो बिन्दु ही प्रकाश देते, तो विमान की दो छायाएं बनतीं, जो एक दूसरे के सापेक्ष थोड़ा-सा स्थानांतरित होतीं (अर्थात एक छाया दूसरी पर थोड़ा सरकी हुई होती)। लेकिन सूर्य की चकती का हर बिन्दु प्रकाशमान है और अलग-अलग छायाएं बनाता है जो एक दूसरे के सापेक्ष कुछ स्थानांतरित होती हैं। कम ऊंचाइयों पर यह स्थानांतरण भी कम होता है इसलिए छाया ठीक विमान की आकृति रखती

चित्र 2a, b. प्रकाशमान पिंडों का बिंब।
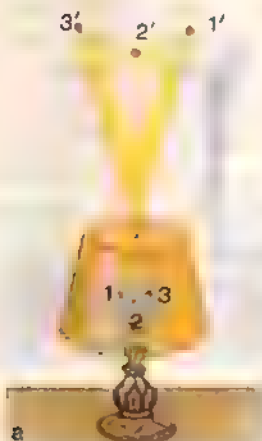
चित्र 3. अंधकैमरा (1544 के एक चित्र पर आधारित आरेख)।
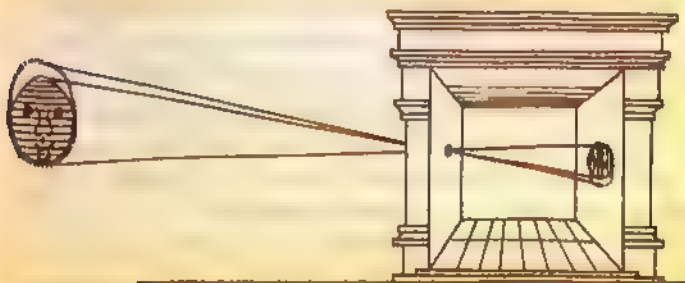
है। मध्यवर्ती ऊंचाइयों पर इन स्थानांतरणों के कारण छाया की परि-रेखा अस्पष्ट हो जाती है (चित्र 1b)। अधिक ऊंचाई से विमान की छाया पूरे वृत्त को भर देती है, जो सूर्य की चकती की नकल होता है (चित्र 1c)। सूर्य की चकती के हर विन्दु की प्राथमिक 'छाया' उसका छायारूपी बिंब बना देती है। इस प्रकार, नियत ज्यामितिक परि-स्थितियों में अपारदर्शक पर्दा (हमारे उदाहरण में विमान) भी सरल-तम प्रकाशिकीय तंत्र का काम कर सकता है।

सबसे सरल कैमरा. प्रकाश-किरणों की सहायता से सिर्फ छाया-रूपी बिंब ही नहीं बनाये जाते। यथा, यदि लैंप के शेड मे छोटा-सा छेद है (चित्र 2), तो छत पर प्रकाश की धारी-सी उत्पन्न होती है, जो घोड़े के नाल की याद दिलाती है। यह टंगस्टन के तप्त धागे का बिंब है। कैसे वह बनती है? धागे का हर लघु अंश 1, 2, 3... किरण 1—1′, 2—2′, 3—3′... बनाता है। ये किरणें छत पर छोटे-छोटे धब्बे बनाती हैं, जो मिलकर पूरे धागे का बिंब देती हैं (चित्र 2a)।

यह प्रयोग आप खुद कर सकते हैं। यदि लैंप को काले कपड़े से इस तरह ढका जाये कि छत पर लैंप के अन्य भागों से प्रकाश न पड़े, तो सिर्फ धागे का ही नहीं, पूरे बल्ब का बिंब प्राप्त होगा।

गर्मी के दिन वृक्ष की छाया में जितने भी प्रकाशमान धब्बे होते हैं, सब की आकृति एक जैसी होती है। सघन पत्तों के बीच का हर छेद जमीन पर सूरज का बिंब देता है (चित्र 2b)।

अपने हाथों से अंधकैमरा बनाना कठिन नहीं है। एक छोटे से डब्बे में लगभग 0.1 mm व्यास का छेद किया जाता है। यदि सामने की दीवार की जगह दूधिया कांच लगा दिया जाये, तो उस पर कैमरे के छेद के सामने की वस्तु का बिंब उभर आयेगा। यदि दूधिया काच की जगह प्रकाश-संवेदी फिल्म लगा दी जाये, तो उसकी प्रकाश-संवेदी परत बिंब को "याद" रख लेगी। फिर फिल्म पर उसे उभारना रह

जाता है—निगेटिव मिल जायेगा। पुराने जमाने में अंधकैमरा से ही फोटोचित्र प्राप्त करते थे, जिसे डागेरोटाइप कहा करते थे (फ्रांसीसी चित्रकार और आविष्कारक डागेर के नाम पर)।

तरंग या कणिका. उपरोक्त संवृत्तियों को हमने "प्रकाश सीधी रेखा में गमन करता है" मानकर समझाया। लेकिन प्रकाश सीधी रेखा में ही क्यों गमन करता है? महान अंग्रेज वैज्ञानिक न्यूटन ने इसका कारण बताया कि प्रकाश उड़ती रहने वाली कणिकाओं से बना है। न्यूटन के समकालीन हुईजेंस इसके विपरीत यह मानते थे कि प्रकाश तरंग की प्रकृति रखता है। प्रकाश को तरंग के रूप में मानकर हुईजेंस ने प्रकाश के परावर्तन तथा अपवर्तन और आइसलैंड स्पार (कैल्साइट नामक खनिज के एक रंगहीन पारदर्शक प्रकार) में किरणों के दुहरे अपवर्तन के नियम काफी सरलता से प्राप्त कर लिये। प्रकाश के सरल रेखा पर गमन का 'स्पष्ट' नियम तरंग की दृष्टि से समझाना सबसे कठिन काम निकला।

पानी में पत्थर फेंकते हैं। इससे तरंगें बन-बन कर फैलने लगेंगी। उनके पथ पर स्थित दीवार के छेद से निकलने पर तरंगें फिर से हर दिशा में फैलने लगती हैं (चित्र 4a)। पर प्रकाश की किरण छेद से निकलकर सरल रेखा पर ही प्रसर करती है (चित्र 4b)।

तरंग-प्रक्रिया के रूप में प्रकाश की धारणा पूर्णतया सच निकले, इसके लिए जरूरी था कि प्रकाश के ऋजुरेखीय प्रसरण को तरंग की दृष्टि से समझाया जाये। यह काम फ्रांस के वैज्ञानिक फ्रेनेल **(Fresnel)** ने किया।

फ्रेनेल का निबंध. 1818 में पेरिस की विज्ञान-अकादमी की एक बैठक में फ्रेनेल के निबंध पर विचार किया जा रहा था। निबंध में प्रकाश को तरंगी संवृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया था और इसके साथ ही प्रकाश के ऋजुरेखीय प्रसरण की व्याख्या भी दी गयी थी।

चित्र 4a. पानी में बिंदु S पर पत्थर गिरता है। यह बिंदु तरंगों का स्रोत बन जाता है। यदि तरंगों के पथ पर एक दीवार खड़ी कर दी जाये, जिसमें एक संकरी झिरी बनी हो तो झिरी से तरंगें सभी दिशाओं में अपसृत होने लगेंगी।
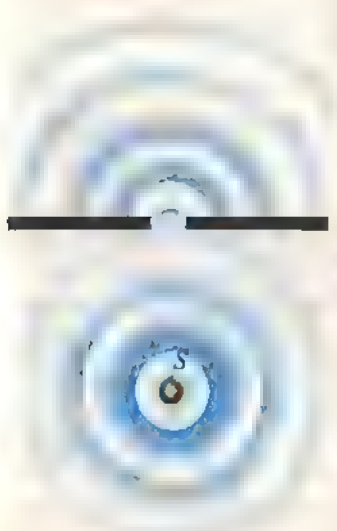
चित्र 4b. प्रकाश-स्रोत से प्रकाश-किरण झिरी से सरल रेखा पर निकलती है।
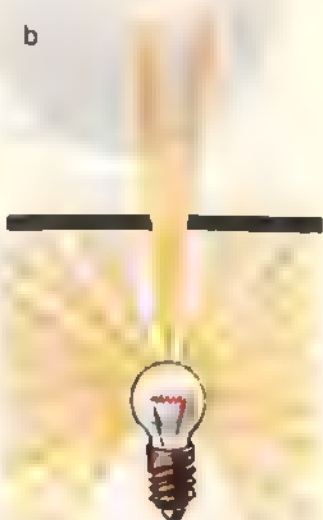
यदि वर्तुल (गोले) S के केंद्र—बिंदु A—पर प्रकाश का बिंदु-स्रोत रखा जाये (चित्र 5)—फ्रेनेल ने विचार प्रस्तुत किया—तो उससे निकलने वाली प्रकाश-तरंगें सतह S तक एक ही साथ पहुंचेंगी। इस वर्तुल के प्रत्येक बिंदु से प्रकाश-तरंगें निकलकर बिंदु B तक पहुंचती हैं और वहां तरंग-सयोजन के नियम से जुड़ती हैं। स्रोत A के अस्तित्व के

चित्र 5. फ्रेनेल-कटिबंध।
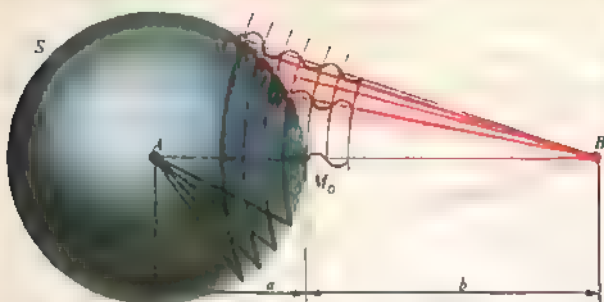
बारे में हम एक तरह से भूल जा सकते हैं और प्रकाश-तरंगों का स्रोत वर्तुल S को मान ले सकते हैं। तरंगों का कुल प्रभाव कलित करने के लिए फ्रेनेल ने वर्तुल की सतह को कटिबंधों में बांट लिया। कटिबंधों का केंद्र स्रोत A से बिंदु B तक जाने वाली प्रकाश-किरण AB और सतह S के कटान-बिंदु M_0 पर था। फ्रेनेल ने कटिबंधों की चौड़ाई इस प्रकार से चुनी कि बिंदु B से हर कटिबंध की भीतरी और बाहरी सीमा-रेखा तक की दूरियों का अंतर प्रकाश-तरंग की लंबाई का आधा हो :

$$M_1B-M_0B=M_2B-M_1B=\ldots=\frac{\lambda}{2}$$

(λ तरंग-लंबाई है)

इस तरह से कटिबंधों में बांटने पर उनका क्षेत्रफल समान रहता है। और इसका मतलब है कि दो पड़ोसी कटिबंध बिन्दु B की दिशा में प्रकाश की लगभग समान मात्राएं उत्सर्जित करते हैं। दूसरी ओर से, पड़ोसी कटिबंधों का प्रकाश आधी तरंग-लंबाई के अंतर वाला पथ

तय करता है और पड़ोसी कटिबंधों के ज्योति-प्रवाहों को जोड़ने पर वे एक-दूसरे को क्षीण कर देते हैं। शून्य कटिबंध से लेकर आगे के कटि-बंधों के ज्योति-प्रवाहों को H_0, H_1, H_2 ... से द्योतित करते हैं। चूंकि H_1, H_3 क्रमश: H_0, H_2 से आधी तरंग-लंबाई पीछे रहते हैं, इसलिए बिन्दु B पर सभी तरंगों को जोड़ते वक्त दोलनों के संयोजन के नियमा-नुसार उन्हें 'ऋण' चिह्न के साथ लेना चाहिए। इससे प्राप्त होता है :

$$H_0-H_1+H_2-H_3+H_4-\ldots$$
$$=H_0-(H_1-H_2)-(H_3-H_4)-\ldots=H_0$$

कोष्ठकों में स्थित व्यंजन नगण्य हैं और बिन्दु B पर बिंदु-स्रोत A की प्रकाश-तरंगों का प्रभाव सिर्फ शून्य कटिबंध के ज्योति-प्रवाह द्वारा निर्धारित होता है। फ्रेनेल कटिबंध का क्षेत्रफल सूत्र $\frac{ab}{a+b}\lambda$ से ज्ञात होता है। हरे प्रकाश ($\lambda=0.5$ μm) की तरंग के लिए फ्रेनेल-कटिबंध का क्षेत्रफल सिर्फ 0.0005 cm^2 होगा, यदि $a=b=20$ cm लिया जाये। यह क्षेत्रफल उस नाल के काट के क्षेत्रफल के बराबर है जिसमें प्रकाश A से B तक पहुंचता है। फ्रेनेल यह दिखाने में सफल हो गये कि प्रकाश की तरंगी प्रकृति के बावजूद, वह संकरे ऋजुरेखीय प्रनाल से होकर गमन करता है। इस प्रकार यह स्थापित हुआ कि **प्रकाश के ऋजुरेखीय गमन का नियम** तरंगी सिद्धांत का प्रतिवाद नहीं करता।

अकादमी की बैठक में उपस्थित फ्रांसीसी गणितज्ञ पुआसोन ने फ्रेनेल का निबंध सुनकर उनके एक रोचक निष्कर्ष की ओर ध्यान दिलाया : यदि बिन्दु-स्रोत के सामने बिल्कुल चिकनी किनारी वाला एक गोल अपारदर्शक पर्दा खड़ा किया जाये तो उसकी छाया के केन्द्र में एक प्रकाशमान धब्बा उत्पन्न होना चाहिए। पुआसोन के विचार में यह सामान्य बुद्धि का प्रतिवाद करता था। लेकिन जब अकादमी के सदस्यों के सामने प्रयोग किया गया, तो छाया-वृत्त के केंद्र में प्रकाश-मान धब्बा उत्पन्न हो गया। प्रकाश रुकावट को लांघकर अपनी जगह

पर पहुंच गया ! इस क्षण से विज्ञान में प्रकाश के तरंगी सिद्धांत का स्थान अडिग हो गया—न्यूटन और हुईजेंस के बीच का विवाद, जो सौ वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा था, प्रकाश की तरंगी धारणा का पक्ष लेते हुए लंबे समय के लिए शांत हो गया।

सबसे बड़ा वेग. बहुत पुराने समय से ही लोग प्रकाश का वेग नापने की कोशिश करते आ रहे थे, पर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। सिर्फ 1676 में डेनमार्क के ज्योतिर्विद र्‌योमेर ने बृहस्पति के उपग्रह का ग्रहण प्रेक्षित करते हुए रिक्त व्योम—**निर्वात**—में प्रकाश का वेग नापने की विधि ज्ञात की।

माप की कठिनाइयां प्रकाश-वेग के बहुत विशाल मान से संबंधित हैं। प्रकाश एक सेकेंड के दस लाखवें अंश जितने कम समय में 300 m की दूरी तय कर लेता है। सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी वह 8 मिनट में तय कर लेता है जबकि यह दूरी 15 करोड़ किलोमीटर है ! आधुनिक मापों के अनुसार निर्वात में प्रकाश का वेग 299 792 km/s है।

एक और बात सामने आयी : प्रकाश के वेग में एक अनोखा गुण है—वह स्रोत के वेग पर निर्भर नहीं करता। इस तरह का निष्कर्ष माइकेल्सन ने अपने प्रयोगों के आधार पर दिया।

स्रोत के वेग पर प्रकाश-वेग की अनिर्भरता का अर्थ क्या है ? मान लें कि जहाज पर आगे और पीछे लगी हुई तोपों से गोलाबारी हो रही है (चित्र 6)। गोलों का वेग v_g है। जहाज आगे की ओर चल पड़ता है — वेग v_j से। साथ ही गोलाबारी भी होती है। अब आगे वाली तोप के गोले का वेग v_g+v_j हो जाता है। पीछे वाली तोप का गोला जहाज की विपरीत दिशा में जाता है इसलिए उसके वेग में से जहाज का वेग घट जाता है, उसका वेग v_g-v_j के बराबर होता है। दूसरे शब्दों में, जहाज चलने की दिशा में तोप चलाने पर गोले के वेग में जहाज का वेग जुड़ जाता है, विपरीत दिशा में—

चित्र 6. प्रकाश का वेग स्रोत के वेग पर नहीं निर्भर करता।

घट जाता है। लेकिन मस्तूल पर लगे प्रोजेक्टरों का प्रकाश जहाज से समान दूरियों पर स्थित बिन्दु *A* तथा *B* तक एक ही समय में पहुंचेगा, चाहे जहाज का वेग कुछ भी हो।

इसका मतलब है कि प्रकाश वेग-संयोजन के सरल नियम का पालन नहीं करता। यह निष्कर्ष आधुनिक भौतिकी के मूल आधारों में से एक है। महान भौतिकविद आइन्सटाइन द्वारा निरूपित सापेक्षिकता-सिद्धांत का आधार प्रयोग द्वारा प्राप्त तथ्य है: स्रोत के वेग पर प्रकाश-वेग की अनिर्भरता। सापेक्षिकता के सिद्धात की एक मुख्य मान्यता यह है कि निर्वात में प्रकाश के वेग से बढ़कर प्रकृति में और कोई वेग नहीं है। यह सबसे बड़ा, या चरम, वेग है।

सापेक्षिकता-सिद्धांत का एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष है—द्रव्यमान और ऊर्जा का संबंध। आइन्सटाइन ने सापेक्षिकता-सिद्धांत की मुख्य मान्यताओं के आधार पर यह स्थापित किया कि ऊर्जा हर द्रव्य में छिपी होती है और द्रव्यमान m की अनुरूपी ऊर्जा E, द्रव्यमान गुणा प्रकाश-वेग के वर्ग के बराबर होती है: $E=mc^2$। यह सूत्र अनेक भौतिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक होता है, इसकी सहायता से परमाणु-नाभिक तथा नाभिकीय प्रतिक्रिया की ऊर्जा का कलन होता है।

आंख और उसका अस्त्र

परीक्षा. प्रकाश ने सिर्फ जीवों की सृष्टि ही नहीं की है। ज्योति-प्रवाह की दया से हम प्रकृति का सौंदर्य बोध करते हैं, दूरस्थ मंदाकिनियों—तारों के विराट जमघटों—और सूक्ष्म जीवाणुओं को देख पाते हैं; प्रकाश की सहायता से हम उच्च तापक्रम और विशाल दूरियों की नाप ले पाते हैं। और इन सब कामो मे अंततः आदमी की आंख ही मुख्य भूमिका अदा करती है। इसीलिए लोगों को आख की संरचना में हमेशा ही रुचि रही है।

1604 में जर्मन ज्योतिर्विद केप्लेर ने आंख की तुलना कैमरे से की, जो रेटीना की अवतल सतह पर बिंब बनाता है। अगली संतति के वैज्ञानिक फ्रांसीसी गणितज्ञ और दार्शनिक डेकार्ट ने प्रयोग द्वारा इस विचार की जाच की। उन्होंने बंद खिडकी के दरवाजे में छेद करके उसमें बैल की आख लगा दी। रेटीना और उसके नीचे के ऊतक को पहले से पारदर्शक बना दिया गया था। उसी पर डेकार्ट ने अपने घर के सामने स्थित सड़क के हिस्से का उल्टा दृश्य देखा।

हमारे समय में आंख के प्रकाशिकीय तंत्र की तुलना कैमरे से की जाती है और यह निराधार नही है। कैमरे का लेंस फिल्म पर बिंब बनाता है, आख का लेंस—एक प्रकाश-संवेदी परत पर, जो बिंब को मस्तिष्क में प्रेषित करती है। कैमरे के लेंस को प्रकाशिकीय अक्ष पर आगे या पीछे खिसकाते हुए, पर्दे पर वस्तु का स्पष्ट बिंब प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए, कैमरे में लेंस इस प्रकार लगाया जाता है कि

उसे खिसकाया जा सके। आंख का लेंस आगे-पीछे तो नहीं हो सकता, पर विशेष पेशियों की सहायता से अपनी वक्रता को घटा या बढ़ा सकता है। इसलिए रेटीना के सापेक्ष अचल होने के बावजूद लेंस उस पर विभिन्न दूरियों वाली वस्तुओं का स्पष्ट बिंब बनाने में समर्थ होता है।

कैमरे में एक तनुपट होता है जो अपना छेद छोटा-बड़ा करके लेंस से होकर गुजरने वाले प्रकाश के प्रवाह को नियंत्रित करता है। आंख की परितारिका यही भूमिका अदा करती है। आंख पर पड़ने वाले ज्योति-प्रवाह (इकाई समय में आंख से गुजरने वाली प्रकाश-ऊर्जा) की मात्रा के अनुसार परितारिका अपना छेद स्वयं छोटा-बड़ा करती रहती है। इस प्रकार जब प्रकाश-ऊर्जा की बहुतायत होती है, तो आंख उससे अपनी रक्षा करती है; प्रकाश-ऊर्जा की कमी होने पर आंख अपनी संवेदिता बढ़ा लेती है।

जब दृष्टि काली वस्तु से चमकदार वस्तु पर फिरायी जाती है तो परितारिका सिकुड़ती है, आइरिस के छेद का व्यास कम होता है, आंख में ज्योति-प्रवाह कम मात्रा में प्रविष्ट होता है और इससे प्रकाश-संवेदी परत पर बोझ कम हो जाता है।

रेटीना (जालीदार झिल्ली) सूक्ष्म शंकुओं और छड़ियों से बनी होती है। इसमें 1250 लाख छड़ियां हैं और 60 लाख शंकु हैं। ये ही आंख के प्रकाश-संवेदी तत्त्व हैं। जब इन पर प्रकाश पड़ता है, तो ये उद्दीप्त हो जाते हैं और इनका उद्दीपन नर्विक रेशों द्वारा मस्तिष्क में प्रेषित हो जाता है।

रेटीना में सिर्फ एक जगह है जो प्रकाश के प्रति संवेदी नहीं है—इसे काला धब्बा कहते हैं। यह दृष्टि-नर्व का प्रवेश-स्थल है। सभी शंकुओं तथा छड़ियों से निकलने वाले नर्विक रेशे यहां चोटी की तरह एक साथ गुंथे होते हैं।

काले धब्बे की उपस्थिति का पता एक रोचक प्रयोग से लग सकता है। दायीं आंख बंद करके चित्र 7 में नीचे स्थित क्रॉस को बायीं आंख

0,8
0,6
0,4
0,2
450
500
550
600
650
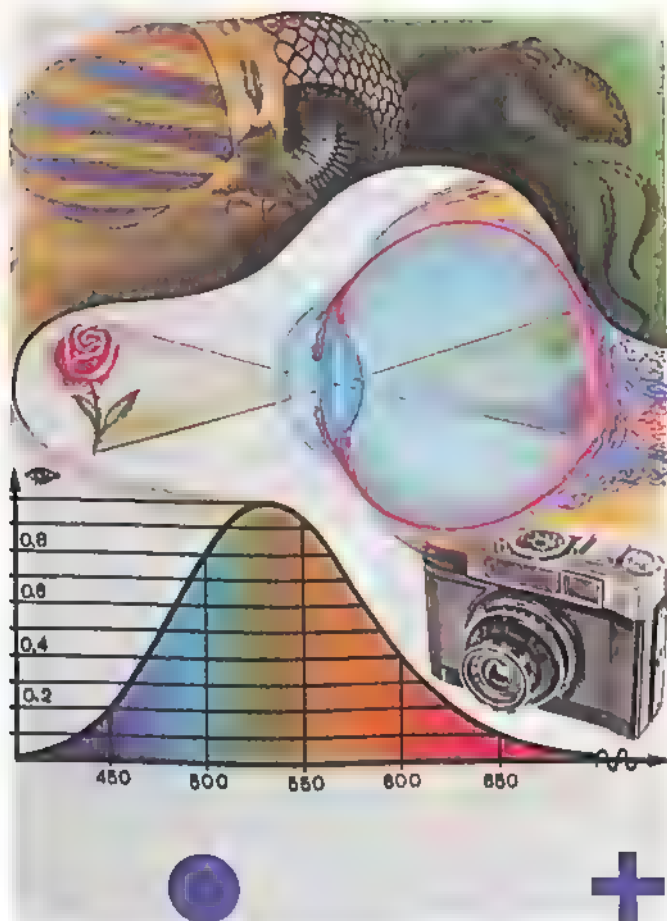
चित्र 7. आंख की बनावट और उसकी
स्पेक्ट्रमी संवेदिता का वक्र।

से देखिए। पार्श्व दृष्टि (कनखी) से आपको बायीं ओर स्थित नीला बिंदा दिखता रहेगा (आंख क्रास पर ही टिकी रहनी चाहिए)। अब चित्र को आंख के निकट लायें। 20-25 cm की दूरी तक पहुंचने पर बिन्दा अदृश्य हो जायेगा। कारण यह है कि इसका बिंब रेटीना के काले धब्बे पर पड़ने लगता है, जो प्रकाश के प्रति संवेदनशील नहीं होता।

आदमी की आंख की प्रकाश के प्रति संवेदिता बहुत ऊंची है। लंबी अवधि तक अंधकार में रहने पर आंख नगण्य ज्योति-प्रवाह भी ग्रहण करने के अनुकूल हो जाती है। आंख की संवेदिता में इस वृद्धि को **अंधकार-अनुकूलन** कहते हैं।

अकादमीशियन वाविलोव के प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि अंधकार की पूरी तरह आदी हो जाने पर आदमी की आंख अलग-अलग फोटोन भी अनुभव कर सकती है।

आंख बहुत तीव्र ज्योति-प्रवाह भी अनुभव कर सकती है—अनुभव योग्य अल्पतम ज्योति-प्रवाह से 10^{12} गुना अधिक। आंख द्वारा अनुभव किये जाने वाले ज्योति-प्रवाह का परास देखा जाये, तो उसकी तुलना किसी काल्पनिक तराजू से ही हो सकती है जो ग्राम के सहस्रांश—किसी जीवाणु—से लेकर सैकड़ों टन भारी वस्तु—जैसे रेलगाड़ी का इंजन—तक तौल सकता है।

हमारी आंख रंग-भेद की भी क्षमता रखती है, अर्थात् वह विकिरण की प्रकृति के अनुसार उसकी अनुभूति भी भिन्न-भिन्न प्रकार से देती है।

यदि ज्योति-प्रवाहों की शक्ति समान हो, तो पीली-हरी किरणें आंख को अधिक चमकदार प्रतीत होंगी, जबकि लाल और बैंगनी बिल्कुल मद्धिम लगेंगी। यदि तरंग-लंबाई $\lambda = 0.555$ μm वाले पीले-हरे प्रकाश की चमक को इकाई मान लिया जाये, तो उसी शक्ति वाले

नीले प्रकाश की चमक 0.2 होगी और लाल प्रकाश की चमक 0.1 होगी। 0.3 μm से कम और 0.9 μm से अधिक तरंग-लंबाई वाले प्रकाश की शक्ति कितनी भी अधिक क्यों न हो, आख उसे अनुभव नही कर सकती।

आंख में आने वाले प्रकाश की तरंग-लंबाई पर उसकी संवेदिता की निर्भरता का ग्राफ बनाया जाये। क्रमित अक्ष (y-अक्ष) पर आंख की संवेदिता को चमक की सापेक्षिक इकाइयो में अंकित करते हैं और क्रमक अक्ष (x-अक्ष) पर नानोमीटर में तरंग की लंबाई (चित्र 7)। इस तरह से प्राप्त ग्राफ को **सापेक्षिक दृश्यमानता का वक्र** कहते हैं। वक्र का उच्चिष्ठ (उच्चतम विंदु), और इसीलिए आख की संवेदिता का भी उच्चिष्ठ, सूर्य की महत्तम विकिरण-क्षमता के साथ संपात करता है।

हमारे दृष्टि-अंग सौर-प्रकाश के साथ अनुकूलित हैं। पर देखने की प्रक्रिया बहुत जटिल है, और अभी तक इसकी कोई संतोषजनक व्याख्या नहीं हो पायी है कि लाल और बैंगनी की तुलना में पीली किरणें अधिक चमकदार क्यों लगती हैं। जटिलता यह है कि दृश्य-प्रत्यक्षण में शिरो-मस्तिष्क भाग लेता है। उसकी कोशिकाओं मे दृश्यों के चित्र जमा होते रहते हैं और वे वहां सुरक्षित रहते हैं, इसलिए अभी के प्रत्यक्षण को अतीत की अनुभूतियां प्रभावित करने लगती हैं। आदमी नींद में भी "देख" सकता है (जैसे सपना) या यूं ही आंखें बंद किये हुए किसी दृश्य का काल्पनिक चित्र भी उत्पन्न कर सकता है।

भिन्न प्रकार की आंखें. रीढ़दार प्राणियों की आंखें आदमी की तरह की ही हैं। विना रीढ़ वाले जंतुओं की आंख या तो अविकसित होती है या अलग-अलग अंखड़ियों **(facets)** से मिलकर बनी होती है। एक अपवाद जरूर ध्यान देने लायक है। ओक्टोपस (अष्टपाद) विना रीढ वाले प्राणियों में सबसे अधिक विकसित जीव है और इसकी आंख की बनावट आदमी की आख से बहुत निकट है। इसमें शृंगी आवरण

है, पलक है, लॅस और रेटीना भी है। ओक्टोपस की आंख बहुत बड़ी होती है; इसका व्यास 38 cm तक हो सकता है।

कीट-पतंगों की आंख बनावट की दृष्टि से दिलचस्प है। सबसे अच्छी तरह से अध्ययन मधुमक्खी की आंख का हुआ है। यह सर की सतह पर अनेक अंखड़ियो से बनी पतली परत के रूप में होती है। अलग-अलग अंखडियों का व्यास लगभग 30 μm तक होता है। छोटी होने के कारण इन अंखड़ियों में प्रकाश को संकेंद्रित करने वाला लॅस नहीं हो सकता है इसलिए मधुमक्खी छोटी वस्तुओं में अच्छी तरह भेद नहीं कर पाती; आदमी की आंख 30 गुनी छोटी वस्तुओं को देख सकती है, बनिस्बत कि मधुमक्खी की आंख के। पर मधुमक्खी परा-बैंगनी विकिरण (तरंग-लंबाई 0.3 μm तक) अनुभव कर सकती है, जो हमारे लिए अदृश्य है। इसीलिए वनस्पति-जगत मधुमक्खी को हमारी तुलना में कहीं अधिक रंग-बिरंगा दिखता है। बहुत से फूल जो हमें सफेद लगते हैं, पराबैंगनी विकिरण को भिन्न-भिन्न प्रकार से परा-वर्तित करते हैं और मधुमक्खी के लिए वे "रंगीन" होते हैं।

मधुमक्खियां प्रकाश की प्रति सेकेंड 200 बार आवृत्ति वाली कौंधें अलग-अलग देखने को क्षमता रखती हैं। आदमी के लिए इससे 10 गुनी कम आवृत्ति वाली कौंधें एक सतत ज्योति-प्रवाह बन जाती हैं। यदि हमारी आंख मधुमक्खी की आंख की तरह तेज होती, तो हम सिनेमा या टेलीविजन के पर्दे पर अलग-अलग चित्रों की छायाओं का एक-एक कर रेंगते हुए पार होना देखते। शायद मधुमक्खियों को हमारी तुलना में कहीं अधिक तेज गतियों का अवलोकन करना पड़ता है। छत्ते में मधुमक्खियां बहुत विशाल आवृत्ति से पंख फड़फड़ाती रहती हैं और बहुत तेजी से स्थान-परिवर्तन करती रहती हैं। आदमी की आंख इन गतियों का अनुसरण नहीं कर पाती, पर मधुमक्खी की आंख करती रहती है।

मधुमक्खियों की आंख की एक और विशेषता है—वह प्रकाश का

ध्रुवण अच्छी तरह महसूस कर सकती है, जिससे मधुमक्खी सूर्य की दिशा सरलतापूर्वक निर्धारित कर लेती है।

दूरबीन. आदमी की दृष्टि अपूर्ण है। हमारी आंखें न तो उन वस्तुओं को देख पाती हैं जो हमसे बहुत दूर हैं, न उन वस्तुओं को ही जो आंखों के बहुत निकट हैं। प्रकाशिकीय उपकरण हमारी दृष्टि-क्षमता कई गुना अधिक बढ़ाने में सहायक होते हैं। उदाहरणतया, दूरबीन ने आदमी के समक्ष अंतरिक्ष-जगत को उद्घाटित किया।

दूरबीन का आविष्कार डेनमार्क के प्रकाशिकीविद लिपेर्सगे ने किया था। यह आविष्कार युद्ध के लिए महत्वपूर्ण था, इसलिए डेनमार्क की सरकार ने इसे गुप्त रखा। फिर भी, दूर की वस्तु पास लाने वाली प्रयुक्ति की बनावट के बारे में अफवाहें योरप में फैल ही गयी। इसके बारे में इटली के महान वैज्ञानिक गैलीली ने भी सुना। उन्होंने स्वतंत्र रूप से कहीं अधिक अच्छी संरचना वाली दूरबीन बना ली।

गैलीली ने दूरबीन को आकाश की ओर निर्दिष्ट किया जहां प्रेक्षण के लिए सबसे रोचक वस्तुएं थीं। वहां उन्होंने वृहस्पति के उपग्रह की खोज की, सूर्य पर धब्बों को देखा, आकाश-गंगा के अलग-अलग तारों का अवलोकन किया! शुक्र ग्रह दूरबीन में इतना साफ नजर आ रहा था—ठीक चांद की तरह! पतले हंसिये से लेकर पूर्ण चकती तक, उसकी हर कला स्पष्ट दिखने लगी थी। वृहस्पति के उपग्रह का प्रेक्षण करते हुए गैलीली ने वह देखा जिसका पहले लोग सिर्फ अनुमान ही करते थे—सूर्य के गिर्द पृथ्वी और अन्य ग्रहों की परिक्रमा। दूरबीन की बनावट कैसी है और उसके कार्य का सिद्धांत क्या है?

आंख की रेटीना पर वस्तु के बिंब का आकार इस बात पर निर्भर करता है कि उसे हम किस कोण पर देखते हैं। कालिख जमे शीशे पर एक गोल सिक्का रखकर शीशे को आंख से कोई 20 cm दूर करके उससे सूर्य को देखें और उसे खिसकाते हुए सूर्य को सिक्के से ढक लें।

हमारे सूर्य का व्यास 13 लाख 91 हजार किलोमीटर है लेकिन वह हमसे 1500 लाख किलोमीटर दूर है। पर रेटीना पर उसका बिंब करीब दस गुना छोटा है बनिस्बत कि आंख से कोई 20 cm दूर स्थित सिक्के के बिंब के। हमारे उदाहरण में सूर्य (मान लें) लगभग आधी डिग्री के कोण पर दिखता है और सिक्का करीब 10 गुना अधिक बड़े कोण पर। वस्तु जिस कोण पर दिखती है, उसे वस्तु का **कोणिक व्यास** कहते हैं। यह कोण वस्तु की परिरेखा से आंख की परितारिका तक जाने वाली किरणों से बनता है। यथा, सूर्य का कोणिक व्यास 32′ है। आंख की रेटीना पर सूर्य के बिंब का आकार इसी कोण द्वारा निर्धारित होता है। जब किसी वस्तु की परिरेखा पर आमने-सामने के बिंदु 1′ से कम कोण पर दिखते हैं, तो रेटीना पर उनके बिंब घुल-मिल जाते हैं और वस्तु सिर्फ एक बिंदु की तरह दिखने लगती है; उसमें अलग-अलग बिंदुओं की पहचान नहीं हो पाती। कहते हैं कि अनुमत क्षमता 1 मिनट के कोण से कम नहीं है (अर्थात वह इससे कम कोणिक व्यास वाली वस्तु के विवरणों को देखने में असमर्थ है)। अन्यतः, वस्तु के विवरणों को देख पाने के लिए आवश्यक है कि वस्तु 1′ से अधिक कोण पर दिखे।

वस्तु सामान्यतया जिस कोण पर दिखती है, दूरबीन उसे बड़ा कर देती है। दूरबीन का लेंस दूरस्थ वस्तु का बिंब बनाता है और यह बिंब नेत्रक में से देखा जाता है। यदि दूरबीन के लेंस का व्यास D mm है, तो उसकी सहायता से कोणिक माप $\frac{140''}{D}$ वाली वस्तुएं स्पष्टता से देखी जा सकती हैं। इसलिए दूरबीन का व्यास जितना बड़ा होगा, अंतरिक्ष-जगत के उतनी दूर के दृश्य स्पष्ट किये जा सकेंगे। इसीलिए दूरबीनों में बड़े-बड़े लेंस लगाये जाते हैं। सबसे शक्तिशाली दूरबीन सोवियत संघ में बनायी गयी है, जिसके दर्पण का व्यास 6 m है।

बड़ी दूरबीन. बड़ी दूरबीन बनाना कोई सरल काम नहीं है। दुनिया के सिर्फ बहुत विकसित देश ही मीटर में नापे जाने वाले बड़े व्यास की दूरबीन बना सकते हैं। हमारी विशाल दूरबीन के बनने से पहले विश्व की सबसे शक्तिशाली दूरबीन अमरीका में थी। इसके दर्पण का व्यास 5 m है, अर्थात हमारी दूरबीन से सिर्फ 1 m कम है, पर वह तारों का प्रकाश डेढ़ गुना कम मात्रा में जमा करती है, बनिस्वत कि हमारी दूरबीन के।

दूरबीन का मुख्य अंग छः मीटर व्यास वाला एक अवतल दर्पण है। शीशे की वस्तुएं आदमी पांच हजार वर्षों से बनाता आ रहा है, पर इतनी बड़ी ढलाई इतिहास में कभी नहीं हुई थी। दर्पण के लिए पिघले शीशे को ढालकर बनायी गयी चकती का भार 70 टन था। ढलाई के बाद विशेष कार्यक्रम के अनुसार इसे दो वर्षों की अवधि में ठंडा किया गया। एकबारगी से ठंडा करने पर शीशे के भीतरी भागों में ऐसे प्रतिबल उत्पन्न होते कि वह दृश्यक का काम करने लायक नहीं रह जाता। इसे घिसने और चिकना करने में ही 15 हजार कैरेट हीरा लगा था। फिर इसे सावधानी से ढोया गया और उत्तरी काकेशस के पास्तुखोव पर्वत पर लगाया गया।

इस अनोखे उपकरण के स्थान का चुनाव आकस्मिक रूप से नहीं हुआ था। दूरस्थ क्षीण चमक वाले तारों को सिर्फ उन्हीं परिस्थितियों में देखा जा सकता है, जब तारों के ज्योति-प्रवाह पर वातावरण का प्रभाव बहुत कम होता है। विशेष वैज्ञानिक अभियान-दल ने निर्धारित किया कि पास्तुखोव पर्वत पर मौसम सबसे अधिक अनुकूल है और उसकी चोटी पर बड़ी दूरबीन लगायी जा सकती है।

आज यह दूरबीन सोवियत वैज्ञानिकों के सामने नयी संभावनाएं प्रस्तुत कर रही है; इसकी सहायता से वे ब्रह्मांड में और भी गहरी पैठ कर सकते हैं, मानव-ज्ञान के विकास में नया योगदान दे सकते हैं।

विश्व की सबसे बड़ी दूरबीन किस प्रकार की समस्याओं के हल में

सहायक हो रही है ? इसकी सहायता से नंगी आंखों से सबसे क्षीण दिखने वाले तारे की तुलना में 1 करोड़ गुना अधिक क्षीण तारे का प्रेक्षण संभव हो जाता है। इन क्षीण तारों के बीच कई ऐसे पिंड हैं, जो ब्रह्मांड के रहस्यों पर से पर्दा उठा सकते हैं। जीवन के विभिन्न मोड़ों से गुजर रहे तारो के अध्ययन से वैज्ञानिकगण हमारे सूर्य का भविष्य बता सकेंगे, वे यह समझ पायेंगे कि अरबों वर्ष बाद हमारे सूर्य का क्या होगा।

अंतरिक्ष की प्रेक्ष्य-सीमा में अनेक प्रकाश-स्रोत हैं, जिनके अध्ययन में इस शक्तिशाली दूरबीन का उपयोग हो सकता है। ये पुल्सार (स्पंदक, रुक-रुक कर स्पंदन के रूप में विकिरण देने वाले खगोलिक पिंड) हैं, क्वाजार (मिथ्यातारक पिंड) हैं, परिवर्ती मंदाकिनियां हैं। बहुत बड़ा तारा कालांतर में अपने ही गुरुत्वाकर्षण से संपीडित होता हुआ सिकुड़ने लगता है और अत्यंत घने पिंड में परिणत होने लगता है, जिसे "काला विवर" कहते हैं। इसे तारे के जीवन का अंतिम चरण मानते हैं और इस समय उसके भीतर क्या प्रक्रियाएं चलती हैं, इसका अध्ययन भी शायद हमारी बड़ी दूरबीन की सहायता से संभव होगा।

तारे का व्यास कैसे नापते हैं ? ओरीयोन राशि के बेटेलहाइज नामक तारे जैसे थोड़े लाल दिखने वाले तारे ज्यादा गर्म नहीं होते; यह उनके विकिरण के स्पेक्ट्रम से पता चलता है। दूसरे तारों की तुलना में इन तारों को शीतल माना जा सकता है। ये इस वर्ग के तारे हैं जिनकी सतह सिर्फ $3000^\circ K$ तक गर्म रहती है। जब पिंड का ताप-क्रम घटता है, उसकी इकाई सतह से विकिरणित ऊर्जा की मात्रा उसके परम तापक्रम के चौथे घात के अनुपात में घटती है। और इसका मतलब है कि लाल तारे की इकाई सतह से विकिरण-प्रवाह 16 गुना कम होगा, बनिस्बत कि सूर्य की उतनी ही बड़ी सतह से। लेकिन बेटेलहाइज बहुत ज्यादा प्रकाश देता है। लाल तारों के तीव्र ज्योति-

प्रवाह को एक सबसे सरल व्याख्या यह हो सकती है कि उनका आकार बहुत बडा है। पर कलन से पता चला कि इसके लिए तारे का व्यास बहुत बड़ा होना चाहिए, इतना बड़ा कि शंका उत्पन्न हो गयी : इनकी अधिक चमक का कोई अन्य कारण तो नहीं है, जो इनके आकार के साथ कोई संबंध नहीं रखता ?

इस प्रश्न का उत्तर तारे का व्यास नापने के बाद ही दिया जा सकता था। पर सबसे शक्तिशाली दूरबीन में भी तारे बिंदु की तरह ही लगते हैं, इसलिए उनका आकार निर्धारित करना मुश्किल होता है। इस जटिल समस्या का हल अमरीकी भौतिकविद माइकेलसन और उनके सहायकों ने निकाला—सिर्फ दो साधारण झिरियों की मदद से। 19-वीं शती के मध्य में ही फीजो ने एक सुंदर विधि प्रस्तावित्त की थी, जिसकी सहायता से तारे का व्यास नापा जा सकता था। फीजो का विचार इस तरह का था। यदि दूरबीन के लेंस के सामने दूरी D पर पर्दे में दो झिरियां बना दी जायें, तो उनके सामने के दूरस्थ प्रकाश-स्रोत से दूरबीन के नाभिक-तल पर व्यतिकरण-चित्र प्राप्त होगा। अब यदि झिरियों से युक्त दूरबीन को अत्यंत निकट स्थित दो तारों की ओर निर्दिष्ट किया जाये, तो हर तारा अपनी व्यतिकरण-पट्टियों का अलग-अलग तंत्र बनायेगा। यदि दूरबीन को इस तरह से निर्दिष्ट किया जाये कि एक तारे का प्रकाश दूरबीन के प्रकाशिकीय अक्ष के समांतर हो, तो दूसरे तारे की प्रकाश-किरण अक्ष के साथ कोण θ बनायेगी (यह दोनों तारों की आपसी कोणिक दूरी व्यक्त करता है)।

विवर्तन-चित्रों का एक दूसरे के सापेक्ष स्थानांतरण भी कोण θ द्वारा ही निर्धारित होगा (चित्र 8)। विवर्तन-चित्र का केंद्रीय उच्चिष्ठ और इसके तुरंत बाद वाला उच्चिष्ठ एक-दूसरे से जिस दूरी पर होंगे, वह कोण $\varphi = \frac{\lambda}{D}$ द्वारा निर्धारित होगा। यदि D इस प्रकार चुना जाये कि कोण $\varphi = 2\,\theta$ हो, तो प्रथम तारे के विवर्तन-चित्र का उच्चिष्ठ

चित्र 8. तारे का व्यास निर्धारित करने के लिए फीज़ो द्वारा प्रस्तावित और स्टेफान द्वारा कार्यान्वित प्रयोग। दूरी D बहुत सूक्ष्म है।
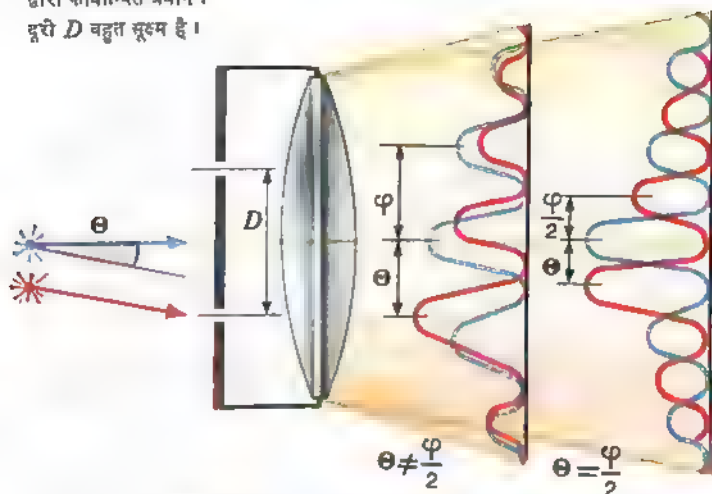
दूसरे तारे के विवर्तन-चित्र के अल्पिष्ठ के साथ संपात कर जायेगा और लेंस का नाभिक-तल लगभग समरूपता से प्रकाशमान हो उठेगा—पट्टियां घुल-मिल जायेंगी। यह सब उस क्षण होगा जब $\theta=\frac{\varphi}{2}$ होगा। इस प्रकार, कोण θ की माप से राशि D उस क्षण के लिए निर्धारित होती है, जब विवर्तन-पट्टियां गायब हो जाती हैं। कारण यह कि विवर्तन-चित्र तब बिखरता है जब $\theta=\frac{\lambda}{2D}$ होता है।

तारे की विपरीत किनारियों को दो भिन्न प्रकाश-स्रोत माना जा सकता है, जिनकी आपसी कोणिक दूरी तारे के कोणिक व्यास के बरा-

बर है। इसका मतलब है कि दूरबीन को तारे की एक किनारी की ओर निर्दिष्ट करके विवर्तन-चित्र की सहायता से उसका कोणिक व्यास θ ज्ञात किया जा सकता है; इसमें पृथ्वी और तारे की दूरी से गुणा करने पर तारे का रैखिक व्यास भी ज्ञात हो जायेगा।

फीजो द्वारा प्रस्तावित प्रयोग को कार्यान्वित करने का प्रथम प्रयत्न स्टेफान ने किया था। यह प्रयत्न असफल रहा। राशि D इतनी छोटी मिली कि तारे के कोणिक व्यास θ का मान नहीं निकाला जा सका।

50 वर्ष बाद तारे का व्यास नापने की समस्या की ओर माइकेल्सन आकर्षित हुए। वह समझ गये कि छोटी दूरबीन से भी दूरी D का बड़ा मान कैसे प्राप्त हो सकता है।

2.5 m व्यास के लेंस वाली दूरबीन के सामने माइकेल्सन ने समतल दर्पण की टुकड़ियां (चित्र 9 में 1, 2, 3, 4) रख दीं। अब कारगर दूरी कर्त AB के बराबर हो गयी जो दूरबीन के लेंस से काफी अधिक थी। इस प्रयुक्ति के साथ दूरबीन को बेटेलहाइज की ओर निर्दिष्ट किया गया। शुरू में व्यतिकरण-पट्टियां दिख रही थीं। लेकिन जब दर्पणों (1, 4) को दूर खिसकाया गया, तो वे गायब हो गयीं। वे एक अन्य कारण से भी लुप्त हो सकती थीं—अर्थात, यदि खिसकाते वक्त दर्पण अपनी जगह से थोड़ा घूम जाता। दर्पण की स्थिति में आकस्मिक परिवर्तन से प्रयोग में गलती न हो जाये, इसके लिए व्यतिकरण-पट्टियों के गायब होते ही माइकेल्सन ने सारा उपस्कर एक अन्य तारे की ओर निर्दिष्ट कर दिया—पट्टियां पुनः प्रकट हो गयीं। इसका मतलब था कि दर्पण खिसकाते वक्त उनके तलों की दिशा में परिवर्तन नहीं आया था। अन्यथा नया तारा देखते वक्त पट्टियां प्रकट नहीं होतीं। प्रणाली विश्वस्त थी।

प्रयोग सफल रहा और यह बहुत बड़ी विजय थी—झिरियों और दर्पणों जैसी सरल प्रयुक्तियों से लैंस दूरबीन की मदद से तारे का आकार निर्धारित किया जा सका। बेटेलहाइज का व्यास 3900 लाख km

चित्र 9. माइकेल्सन के संयंत्र द्वारा तारे के व्यास का निर्धारण। उन्होंने दर्पण 1, 2, 3, 4 की सहायता से दूरी D को बढ़ा दिया जिससे समता $\theta=\frac{\lambda}{2D}$ उपलब्ध हो सकी।
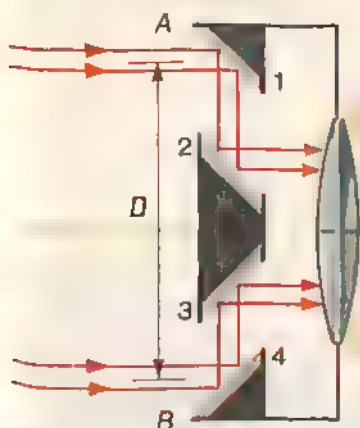
निकला। यदि इस तारे को सूर्य की जगह रखा जाये, तो पृथ्वी का कक्ष तारे के भीतर होगा।

खुर्दबीन. नन्ही वस्तु को देखने के लिए उसे आंख के निकट लाते हैं जिससे उसका कोणिक व्यास बढ जाता है और उसके अलग-अलग बिंदु स्पष्ट हो उठते हैं। लेकिन आंख का लेंस वस्तु का स्पष्ट बिंब तभी दे पाता है जब आख से वस्तु 10 cm से कम दूर नहीं होती। इससे कम दूरी होने पर पेशियों द्वारा उत्पन्न की गयी लेंस की महत्तम वक्रता इतनी पर्याप्त नहीं होती कि लेंस रेटीना पर वस्तु का स्पष्ट बिंब बना सके। इसीलिए बहुत छोटी वस्तुओ को विशालक शीशे या खुर्दबीन (चित्र 10) से देखते हैं—ये उपकरण कोण की माप बढ़ा देते हैं, जिस पर नजदीक की वस्तु दिखती है।

चित्र 10. प्रकाशीय खुर्दबीन।

लेवेनहूक के "जीव-जंतु". जटिल द्विसोपानी सूक्ष्मदर्शी का आरेख गैलीली ने 1610 में ही प्रस्तावित किया था, पर कई कारणों से सूक्ष्म वस्तुओं का अध्ययन बहुत देर में शुरू हुआ।

1673 में लंदन रायल सोसाइटी को (यह इंगलैंड की विज्ञान-अकादमी का नाम है) हॉलैंड से एक चिट्ठी मिली। इसमें कपड़ों के व्यापारी एंटोनी लेवेनहूक ने अद्भुत प्रेक्षणों का वर्णन किया था। अपनी खुर्दबीन की सहायता से उन्होंने अब तक अनजाने उस जीव-जगत की खोज की, जो नंगी आंखों के लिए अदृश्य था।

"मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने एक बूंद में जंतुओं का बहुत बड़ा झुंड देखा, ये चंचल थे और पानी में मछलियों की तरह हर दिशा में भाग-दौड़ कर रहे थे; उनमें से जो सबसे छोटा था, वह बड़े चिल्लड़ की आंख से हजार गुना छोटा था," लेवेनहूक ने लिखा था। इंगलैंड में कोई भी कई वर्षों तक उसके प्रयोग की सच्चाई सिद्ध नहीं कर पाया। अंत में काफी मेहनत के बाद प्रसिद्ध वैज्ञानिक रॉबर्ट हूक ने

लेवेनहूक के "जंतुओं" को मिर्च के अर्क में देखा। लेकिन कपड़ों का व्यापारी प्रसिद्ध वैज्ञानिक की तुलना में कही अधिक सूक्ष्म वस्तुओ को देखा करता था। यह निष्कर्ष उसके प्रयोगों के वर्णन से निकाला जा सकता था, जो उसने रायल सोसाइटी को भेजा था।

लेवेनहूक की "खुर्दबीन". कितना शक्तिशाली था हॉलैंडवासी का उपकरण, यदि वह हूक के आधुनिकतम प्रकाशिकीय नियमों पर आधारित उपकरण से भी अधिक सूक्ष्म वस्तुएं दिखा सकता था ?

1681 में रायल सोसाइटी की एक बैठक ने निर्णय लिया कि इस असाधारण पत्र-लेखक से उसके उपकरण की बनावट का रहस्य खोलने का अनुरोध किया जाये। लेकिन लेवेनहूक सिर्फ अपने नये-नये आश्चर्यजनक प्रेक्षणों का वर्णन ही भेजता रहा; अपने उपकरणों के बारे में एक शब्द भी वह नहीं लिखता था। रायल सोसाइटी को हॉलैंड में अपने एक वैज्ञानिक को प्रतिनिधि के रूप में भेजना पड़ा जो लेवेनहूक से उसकी खुर्दबीन खरीद सके। प्रतिनिधि ने देखा कि हॉलैंडवासी की सभी खुर्दबीनें और कुछ नहीं, साधारण विशालक शीशे हैं। उनकी असाधारणता इस बात में थी कि उनका आकार बहुत छोटा था, वे पिन के सर से ज्यादा बड़े नही थे।

सभी जानते हैं कि विशालक शीशे की वक्रता-त्रिज्या जितनी कम होगी, विशालन उतना ही अधिक होगा। लेवेनहूक के जो सबसे अच्छे विशालक थे, वे वस्तु को 270 गुना वर्धित करते थे। इस वर्धन ने ही उसके सामने अज्ञात सूक्ष्म-जगत को प्रकट किया था। लेवेनहूक ने रक्तवाही कणों, पेशियों के तंतुओं की बनावट, जीवाणु, आदि, अनेक वस्तुएं देखी। इन सबके बारे में उसने अपनी पुस्तक "एंटोनी लेवेनहूक द्वारा प्रकृति के उद्घाटित रहस्य" में लिखा।

आधुनिक खुर्दबीन. 19-वीं शती के आरंभ तक जटिल खुर्दबीनें गैलीली के आरेख पर बनती थीं और वे अच्छी तरह से बनाये गये

विशालक शीशे की बराबरी नहीं कर पाती थी। सिर्फ 1824 में कई लेंसों को मिलाकर जटिल दृश्यक बनाया गया और खुर्दबीन में लगाया गया। ऐसे दृश्यक 500, और यहां तक कि 1000 गुना भी, वर्धन दे सकते थे। इस खुर्दबीन ने लेवेनहूक के विशालक को बहुत पीछे छोड़ दिया। पिछली शती के आठवें दशक में जर्मन वैज्ञानिक आब्बे ने आधुनिक प्रकाशिकीय खुर्दबीन का सिद्धांत विकसित किया। इस सिद्धांत के अनुसार ही खुर्दबीन के प्रकाशिकीय तंत्र का हिसाब लगाया जाता है।

प्रकाशिकीय खुर्दबीनों से वर्धन 2000 गुना से अधिक नहीं होता। बहुत सी वैज्ञानिक तथा तकनीकी समस्याओं के हल के लिए यह पर्याप्त नहीं है। यदि 2000 गुना वर्धन देने वाली खुर्दबीन के साथ वैसी ही एक दूसरी लगा दी जाये, तो वर्धन $2000 \times 2000 = 40$ लाख गुना होगा। पर इस वर्धन से हमें वस्तु में कोई भी नया सूक्ष्म विवरण नही दिखेगा! इसके विपरीत बिंब लिपा-पुता नजर आयेगा। अखबार में छपा कोई चित्र एक अच्छे विशालक से देखिए। कोई नया विवरण नजर नहीं आयेगा; चित्र सफेद तथा काले बिंदुओं से भरा हुआ दिखेगा।

यही बात खुर्दबीन के साथ भी है। अतिरिक्त वर्धन उन वस्तुओं को देखने में सहायक नहीं होगा, जिनका आकार प्रकाश-तरंग की लंबाई से कम होता है। खुर्दबीन द्वारा दिखने वाली वस्तु की अल्पतम माप d सूत्र $d = \frac{0.61\lambda}{A}$ से निधारित होती है। सूत्र में स्थिरांक A लगभग इकाई के बराबर है। हरे प्रकाश के लिए राशि d का मान 0.3 μm होता है। ऐसी वस्तु को $1'$ के कोण पर देखने के लिए 1000 गुना वर्धन वाली खुर्दबीन चाहिए।

वस्तु को लघुतरंगो वाले अदृश्य विकिरण से प्रकाशित किया जा सकता है और इस विकिरण से चमकने वाले पर्दे पर बिंब प्राप्त करके उसका दृश्य-चित्र प्राप्त किया जा सकता है। पर इस विधि से भी कुछ ज्यादा लाभ नही होगा। बात यह है कि ऐसी कोई सामग्री ही

नहीं है जिससे लघुतरंगी खुर्दबीन का लेंस बनाया जा सके। सबसे अच्छी सामग्रियां क्वार्ट्स और फ्लोराइट हैं। पर क्वार्ट्स 0.18 µm से कम लम्बाई की तरंगों को अवशोषित कर लेता है। फ्लोराइट का अपना 'कीर्तिमान' है—वह सिर्फ 0.12 µm तक की तरंगों के लिए पारदर्शक है। ये तरंगें दृश्य-विकिरण की सीमा पर स्थित तरंगों से तीन गुना कम हैं। लघुतरंगी पराबैंगनी किरणो के लिए सभी द्रव्य अपारदर्शक हैं। दर्पणी खुर्दबीन, जिसमें लेंस की जगह दर्पण लगाये जाते हैं, पराबैंगनी विकिरण की अतिलघु तरंगों के परास मे काम कर सकती है, पर यह एक अत्यंत जटिल उपकरण है। इसके अतिरिक्त लघुतरंगी पराबैंगनी विकिरण हवा द्वारा तेजी से अवशोषित होता है, इसलिए खुर्दबीन को निर्वात में रखना पड़ता है। पर एक बिल्कुल दूसरा रास्ता भी है।

एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन. वस्तु का चित्र प्रकाश से ही नहीं, आविष्ट कणों के प्रवाह द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। इस काम के लिए सबसे उपयुक्त कण एलेक्ट्रोन हैं। जब विषाणु (वाइरस) जैसी सूक्ष्म वस्तुओं से वास्ता पड़ता है, तो एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन का उपयोग होता है। पानी की विषाणुयुक्त बूंद पर पतली (0.01 µm मोटी) कोलायडी (गोंदनुमा) झिल्ली फैला देते हैं। झिल्ली के सूखने पर बूंद को एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन में मेज पर रखते हैं। एलेक्ट्रोनों के विशेष स्रोत (एलेक्ट्रोनी तोप) से झिल्ली पर एलेक्ट्रोनों का समांतर पुंज गिरता है (चित्र 11)। विषाणु का शरीर सर्वत्र समान नहीं होता; उसके विभिन्न अंग एलेक्ट्रोनों को अलग-अलग तरह से प्रकीर्णित करते हैं (उन्हें अलग-अलग तरह से छितराते हुए परावर्तित करते हैं)। जो अंग अधिक घने होते हैं, वे एलेक्ट्रोनों को अधिक प्रकीर्णित (तितर-बितर) करते हैं, अतः खुर्दबीन के तनुपट के अपर्चर (विवृत या खुले मुंह 2) में बहुत कम एलेक्ट्रोनों को भेजते हैं। एलेक्ट्रोनी लेंस 1

चित्र 11. एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन का आरेख।
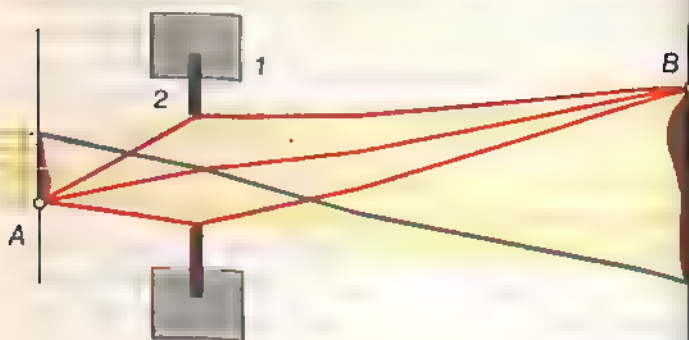
बिन्दु A से पुंज रूप में निकले एलेक्ट्रोनों को पर्दे के बिन्दु B पर जमा करता है और बिन्दु B चमकने लगता है (पर्दा ऐसा ही बनाया जाता है)। इसी प्रकार से लेंस वस्तु के एक-एक बिन्दु का बिंब बनाता है। विषाणु के अधिक घने अंगों का बिंब कम चमकदार होता है (क्योंकि यह अंग एलेक्ट्रोनों को अधिक तितर-बितर करता है)। कम घने अंगों के बिंब अधिक चमकदार होते हैं।

हमने एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन का मुख्य अंग ही देखा है। वास्तविकता में प्रथम लेंस के बाद कोई पर्दा नहीं होता। जिस तल पर पहला लेंस बिंब बनाता है, वह प्रकाशिकीय खुर्दबीन की तरह ही दूसरे लेंस के लिए वस्तु का काम करता है। दूसरे लेंस का बिंब एलेक्ट्रोनों की बौछार से चमकने वाले पर्दे पर बनता है जिसे प्रयोगकर्ता विशालक शीशे से देखता है।

एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन अधिक छोटे विवरणों को दिखाने में समर्थ होती है बनिस्बत कि प्रकाशिकीय खुर्दबीन के, क्योंकि उसकी क्षमता अधिक होती है।

एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन में विवर्तन* का प्रभाव कम क्यों हो जाता है—यह समझने के लिए पहले विख्यात फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई दे ब्रोयेल की एक खोज को देखें।

हमारी शती के तीसरे दशक मे ही दे ब्रोयेल ने एक साहसपूर्ण विचार प्रस्तुत किया था : प्रकाशीय क्वाटम (फोटोन) की गतिमात्रा और उसकी तरंग-लंबाई के बीच जो संबंध $\lambda=\frac{h}{p}$ है, वह अन्य कणों के लिए भी सत्य है। वेग v से गतिमान एलेक्ट्रोन वास्तव में तरंग की भांति ही आचरण करता है, जिसकी लंबाई $\lambda=\frac{h}{mv}$, जहां h=प्लांक का स्थिराक, m=एलेक्ट्रोन का द्रव्यमान है ($mv=p$ गति की मात्रा या आवेग है)।

एलेक्ट्रोनों को खुर्दबीन में अक्सर 15 000 v के विभवातर से गुजरना पडता है, जिससे वे त्वरित हो जाते हैं और उनका वेग 72 000 km/s तक पहुंच जाता है। ऐसे एलेक्ट्रोनों की तरंग-लंबाई 0.01 nm होती है, जो हरे प्रकाश की तरंग-लंबाई से 50 000 गुनी कम है। इस स्थिति में विवर्तन तभी बाधक होगा जब वस्तु का आकार एलेक्ट्रोनों की तरग-लंबाई से कम नहीं होगा।

एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन से हम नानोमीटर के कुछेक दशांश जितने आकार तक की वस्तुएं देखने में समर्थ होते हैं, जो प्रकाशीय खुर्दबीन से दिख पाने वाली सूक्ष्मतम वस्तुओं से सैकड़ों गुना अधिक सूक्ष्म हैं।

---

* वस्तु को हम देख पायें, इसके लिए जरूरी है कि वस्तु से परावर्तित प्रकाश-तरंगें हमारी आंखों तक पहुचें। पर यदि वस्तु प्रकाश की तरंग-लंबाई से छोटी होती है तो प्रकाश-तरंगें उसे लांघ कर या कतरा कर निकल जाती हैं, उससे परावर्तित नहीं होती हैं। इस संवृत्ति को प्रकाश का विवर्तन कहते हैं। विवर्तन प्रकाश ही नहीं, सभी प्रकार की तरंगों का गण है; तरंगें तरंग-लबाई से छोटे आकार की बाधाओं को कतरा कर निकल जाती हैं। —अनु.

एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन से सूक्ष्म वस्तुओं को देखने की सीमा एलेक्ट्रोनों के विवर्तन के कारण नहीं निर्धारित होती है; वह खुर्दबीन के काम करने के लिए आवश्यक एलेक्ट्रोनों के स्रोत—एलेक्ट्रोनी तोप—के गुणों पर निर्भर करती है।

टटोली खुर्दबीन. यह आधुनिकतम एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन है। इसमें अतिसूक्ष्म एलेक्ट्रोनी किरण, वस्तु के बिन्दु-बिन्दु को क्रम से टटोलती हुई उसका बिंब देती है (चित्र 12)।

मान लें कि एलेक्ट्रोनी किरण के नीचे चींटी है और वर्धन ज्यादा नहीं है। तब खुर्दबीन के पर्दे पर, जो सामान्य टेलीविजन के पर्दे की तरह होता है, चींटी पूरा-पूरा अंट जायेगी। स्विच घुमाते ही पर्दा चींटी के एक पैर से भर जायेगा। यदि और स्विच घुमाया जाये तो चींटी की 'चमड़ी' पर उसके रोंये जैसे सूक्ष्मतम विवरण दिखायी देने लगेंगे।

खुर्दबीन द्वारा 10 गुना से 100 000 गुना तक का वर्धन अलग-अलग चरणों में सीधा स्विच घुमाने से ही मिल जाता है—यह स्विच वैसे ही काम करता है जैसे टेलीविजन में प्रोग्राम बदलने का स्विच।

ऐसी खुर्दबीन के महत्तम वर्धन में चींटी को पूरा-पूरा देखने के लिए फुटबाल के मैदान जितना बड़ा पर्दा चाहिए!

टटोली खुर्दबीन किस तरह से काम करती है और इसकी वर्धन-क्षमता की सीमा किन बातों से निर्धारित होती है? उदाहरण के लिए, वह एक लाख ही क्यों है, दस लाख क्यों नहीं है?

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, प्रेक्ष्य वस्तु पर सूक्ष्म एलेक्ट्रोनी किरण गिरती है। एलेक्ट्रोनों से "प्रकाशित" (और सही कहें तो "प्रक्षालित") क्षेत्र अपने द्वितीयक एलेक्ट्रोन उत्सर्जित करता है, जिन्हें वैद्युत क्षेत्र विशेष क्रिस्टल में प्रविष्ट होने को विवश करते हैं। एलेक्ट्रोनों के प्रभाव से क्रिस्टल चमकने लगता है। क्रिस्टल के पीछे एक फोटोगुणक लगा होता है, जो प्रकाश को विद्युत-धारा (एलेक्ट्रोनी

चित्र 12. टटोली खुर्दबीन।
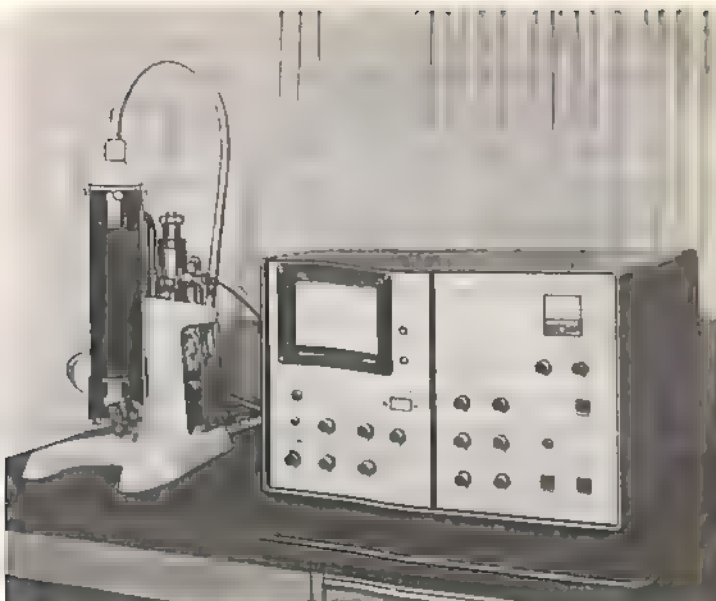
प्रवाह) में परिणत करता है और कीनेस्कोप (चित्रदर्शी) में एलेक्ट्रोनी किरण की चमक संचालित करता है।

वस्तु का हर बिन्दु अपनी-अपनी तरह से द्वितीयक एलेक्ट्रोन उत्सर्जित करता है। वस्तु पर उभरे हुए स्थानों के बिन्दु अधिक एलेक्ट्रोन उत्सर्जित करते हैं और गर्त्त वाले स्थानों के बिन्दु कम। वस्तु की सतह के किसी क्षेत्र से जितने ही अधिक द्वितीयक एलेक्ट्रोन निकलते हैं, टेलीविजन के पर्दे पर तदनुरूप बिन्दु उतने ही चमकदार

होते हैं। कीनेस्कोप का एलेक्ट्रोनी किरण-पुंज पर्दे पर इन्हीं बिन्दुओं से वर्धित चित्र बनाता है। चित्र बिन्दु-बिन्दु करके बना हुआ लगता है—ठीक उसी तरह से, जैसे अखबार में छपा हुआ कोई फोटो। अखबार में छापने के लिए पहले फोटो पर चलनी जैसे महीन छेदों वाली झिल्ली रखकर उसका दूसरी बार फोटो खींचते हैं, जो बिन्दुदार होता है। मूल फोटो में गहरे काले रंग के क्षेत्रों से प्राप्त बिन्दुओं का आकार नकल में अधिक बड़ा होता है। खुर्दबीन में पर्दे पर सिद्धांततः ऐसा ही चित्र प्राप्त होता, लेकिन इसमें बिन्दुओं का आकार एक जैसा होता है; भिन्न होती है उनकी चमक। इसीलिए ऐसी खुर्दबीन को चलनीदार खुर्दबीन भी कहते हैं।

पर्दे के हर धब्बे के अनुरूप वस्तु पर एक सूक्ष्म वृत्त होता है जिसका क्षेत्रफल एलेक्ट्रोनी पुंज के अनुप्रस्थ काट के बराबर होता है। इसका मतलब है कि चलनीदार खुर्दबीन से वस्तु के वे विवरण ही दिखेंगे, जिनका आकार वस्तु को टटोलने वाले एलेक्ट्रोनी पुंज के व्यास से कम न हो।

कण-प्रवाह द्वारा बने पुंज का व्यास कण की तरंग-लंबाई λ से कम नहीं हो सकता, जो लुई दे ब्रोयेल के सूत्र से कलित होती है। इस तरह, यदि प्रकाशीय टटोली खुर्दबीन बनाने की जरूरत पड़ जाये, तो सबसे सूक्ष्म पुंज का व्यास 0.3 μm से कम नहीं हो सकेगा। एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन में पुंज का न्यूनतम व्यास 0.3 nm हो सकता है, जो प्रकाशीय तरंग-लंबाई से 100 गुना कम है। सिद्धांततः पुंज और भी "नोकीला" बनाया जा सकता है—क्षिप्र एलेक्ट्रोनों की तरंग-लंबाई 0.3 nm से भी बहुत कम है। परंतु अधिक पतले पुंज में एलेक्ट्रोनों का प्रवाह इतना कम रहता है कि वह बिंब नहीं बना पाता, चाहे इसके लिए एलेक्ट्रोनों के आधुनिकतम स्रोत ही क्यों न प्रयुक्त होते हों।

अतः चलनीदार एलेक्ट्रोनी खुर्दबीन से दिखने वाली सूक्ष्मतम वस्तु प्रकाशीय खुर्दबीन से प्रेक्ष्य वस्तु की तुलना में 100 गुना छोटी हो

सकती है। चलनीदार खुर्दबीन लगभग इतना ही गुना वर्धन देती है, जो करीब 100 000 गुना के बराबर है।

अंततः खुर्दबीन से इतनी सूक्ष्म वस्तु भी अध्ययन की जा सकेगी जिसकी लंबाई खुर्दबीन में प्रयुक्त सूक्ष्म कण की तरंग-लंबाई के बराबर होगी।

फोटोन की तरंग-लंबाई के साथ तुलनीय राशि (लंबाई) पिंडों की ज्यामितिक मापों को सामान्यतया उच्चतम कोटि की शुद्धता से निर्धारित करती है। इसीलिए मीटर के मानक को प्रकाश-तरंगों की लंबाई में व्यक्त करना विशेष सुविधाजनक सिद्ध हुआ है।

लंबाई का मानक. वर्तमान समय में मीटर का मानक ऐसी लंबाई को माना जाता है, जो द्रव्यमान-संख्या 86 वाले क्रिप्टन-परमाणु द्वारा अवस्था $2p_{10}$ से अवस्था $5d_5$ में संक्रमण करते वक्त उत्सर्जित प्रकाश की 1 650 763 73 तरंग-लंबाइयों के बराबर होती है। इस स्थिति में स्पेक्ट्रम के नारंगी क्षेत्र का विकिरण प्राप्त होता है जिसकी तरंग-लंबाई $\lambda = 6057.8021 \times 10^{-10}$ m होती है।

प्रकाश-तरंग जैसी नन्ही राशियों को आठवें सार्थक अंक की शुद्धता से नाप कर उसकी तुलना मीटर के धातुई मानक के साथ कैसे की जाती है?

अच्छी शुद्ध नाप विवर्तन जाली से मिलती है। ऐसी जाली के लिए पृष्ठ 59 पर दिये गये सूत्र से निष्कर्ष निकलता है कि $\lambda = \frac{D \sin \varphi}{m}$ है। तरंग-लंबाई निर्धारित करने के लिए कोण φ नापना काफी रहता है क्योंकि सूत्र में उपस्थित अन्य राशियां ज्ञात हैं। तरंग-लंबाई की बहुत शुद्ध माप व्यतिकरणमापी की सहायता से भी मिल सकती है; यह ऐसा उपकरण है जिसमें स्थानांतरित प्रावस्था वाली प्रकाश-तरंगें आपस में जोड़ी जाती हैं। इससे सहकेंद्रीय अंधेरी और

चित्र 13 प्रकाश-तरंगों की सहायता से मीटर की लंबाई नापने का आरेख। अर्धपारदर्शक दर्पण 1 प्रकाश-पुंज को विभक्त करता है। किरणों का एक भाग अर्धपारदर्शक दर्पण 2 से गुजरता है और दर्पण 3 द्वारा परावर्तित हो जाता है। किरणों का दूसरा भाग दर्पण 4 से परावर्तित होकर दर्पण 2 से गुजरता है और दर्पण 5 से परावर्तित होता है। दर्पण 3 तथा 5 से परावर्तित किरणें दर्पण 2 से भी परावर्तित होती हैं और पर्दे 6 पर मिलती हैं। चित्र में λ=तरंग-लम्बाई है।
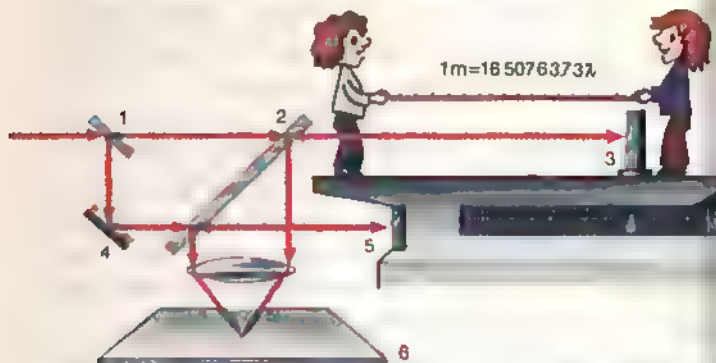
प्रकाशमान पट्टियों से बना हुआ चित्र मिलता है, जिसके विश्लेषण से प्रकाश की तरंग-लंबाई अत्यधिक शुद्धता के साथ निर्धारित होती है।

व्यतिकरणमापी मीटर के भौतिक मानक—प्लैटिनम-इरीडियम छड़ पर अंकित दो लकीरों के बीच की दूरी—की प्रकाशीय विकिरण की तरंग-लंबाई के साथ तुलना करने में भी सहायक होते हैं। इससे मापों की शुद्धता बहुत अधिक बढ़ जाती है, बनिस्बत कि धातुई मानक छड़ पर अंकित अंश-रेखाओं की दूरी से माप लेने के। इसीलिए मीटर के प्रकाशीय मानक की तुलना में धातुई मानक कम शुद्ध मापें देता है।

इसके अतिरिक्त, प्रकाशीय तरंग की लंबाई एक स्थिर राशि है, जबकि धातुई मानक-छड़ कालांतर में विकृत होने लगती है, चाहे वह

चित्र 14. एलेक्ट्रोनो-प्रकाशीय रूपांतरक।
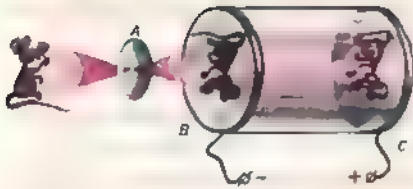
कितनी भी अच्छी धातु से क्यों न बनी हो। कारण है—समय के साथ-साथ धातु की क्रिस्टलिक जाली में परिवर्तन।

अदृश्य को दृश्यमान करना. आंख से अवरक्त विकिरण भी देखा जा सकता है; इसके लिए विशेष प्रयुक्ति—एलेक्ट्रोनो-प्रकाशीय रूपांतरक (चित्र 14)—की सहायता ली जाती है।

लेंस *A* अंधेरे में अदृश्य रूप से "चमकती" वस्तु का बिंब नीचद (कैथोड) *B* पर बनाता है, जिस पर पारदर्शक अर्धचालक पदार्थ की परत चढ़ी होती है। अवरक्त विकिरण के क्वांटम इस परत से टकरा कर उसमें से एलेक्ट्रोनों को निकाल बाहर करते हैं। नीचद *B* और पर्दे (ऊंचद *C*) के बीच वैद्युत विभवांतर रखा जाता है, जिसके प्रभाव से एलेक्ट्रोन त्वरित होते हुए पर्दे *C* से टकराते हैं और उस पर पिछले पर्दे के अवरक्त बिंब की नकल उतार देते हैं। यह पर्दा अब दृश्य विकिरण उत्सर्जित करने लगता है।

अवरक्त बिंब को दृश्य बिंब में दूसरी तरह से भी रूपांतरित किया जा सकता है। इसके लिए टेलीविजन की चित्रनली के पर्दे पर दृश्य प्रकाश से प्रतिक्रिया करने वाली परत की जगह अर्धचालक पदार्थ की

परत जमाते हैं, जो अवरक्त विकिरण के प्रति संवेदी होती है। ऐसे पर्दे से अवरक्त बिंब को एलेक्ट्रोनी किरण एक प्रबलकारी रेडियो-आरेख की सहायता से ग्राहक नली—कीनेस्कोप—पर भेजती है जो ठीक वैसा होता है, जैसा सामान्य टेलीविजन में।

दोनों ही प्रणालियां हल्के गर्म पिंडों का बिंब दृश्य बिंब में रूपांतरित करती हैं। एलेक्ट्रोनो-प्रकाशीय रूपांतरक में फोटोनों की ऊर्जा इतनी अधिक होनी चाहिए कि वे संवेदी परत से एलेक्ट्रोनों को बाहर निकाल सकें। टेलीविजन सरीखे रूपांतरक में जहां विकिरण पहुंचता है, वहां परत की प्रतिरोधिता में परिवर्तन आना चाहिए। इसके लिए फोटोन की ऊर्जा कम भी हो सकती है और इसीलिए ऐसे रूपांतरक से अधिक तरंग-लंबाई वाले विकिरण भी प्रेक्ष्य हो जाते हैं।

द्रव्य और प्रकाश

प्रकाश का अपवर्तन. ईसा पूर्व सन् 140 में ही ग्रीक विद्वान टोलेमी ने हवा से आती किरणों के भिन्न आपतन कोणों के लिए पानी में उनके विचलन कोणों θ (चित्र 15a) की सारणी तैयार की थी। ये कोण किन अनुपातों द्वारा आपस में संबंधित हैं ? प्राचीन काल में इस प्रश्न ने बहुतों को हत्प्रभ किया था। इसका उत्तर सिर्फ 1621 ई. में हॉलैंड के गणितज्ञ स्नेल ने दिया · $n=\frac{\sin \theta_0}{\sin \theta}$। इस सूत्र में, जो साथ ही ध्वनि-तरंगों के लिए भी सत्य है, अपवर्तन का सूचकांक (या सिर्फ अपवर्तनांक) n माध्यम I में प्रकाश-वेग v_1 तथा माध्यम II में प्रकाश-वेग v_2 का अनुपात है।

वेगों के अनुपात $\frac{v_1}{v_2}$ को ही प्रकाश का अपवर्तनांक क्यों कहा जाता है ? योरपीय भाषाओं में इसके लिए 'प्रकाश के टूटने का सूचकांक' शब्द प्रयुक्त होते हैं। ऐसा क्यों ? क्या किरण टूट सकती है ? हां, वह टूट सकती है। पानी भरे गिलास में चम्मच डालिए, हवा और पानी के विभाजक तल पर चम्मच टूटा हुआ लगेगा (चित्र 15b)। हम जानते हैं कि चम्मच में कोई त्रुटि नहीं आयी है। हवा-पानी की विभाजक सीमा पर सिर्फ प्रकाश की किरण टूट गयी है, क्योंकि पानी में प्रकाश का वेग 1.33 गुना कम है बनिस्बत कि हवा में। किरण टूट कर बिल्कुल अलग नहीं हो जाती, वह हवा-पानी की विभाजक सीमा पर

चित्र 15a. प्रकाश का अपवर्तन। θ_0—आपतन-कोण (=परावर्तन कोण), θ—अपवर्तन-कोण; a—आपतित किरण; c—परावर्तित किरण, d—अपवर्तित किरण।
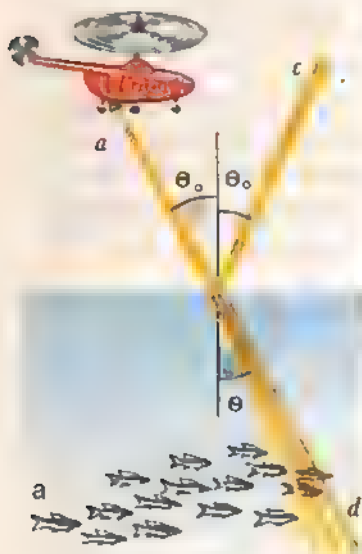
चित्र 15b. पानी और हवा के विभाजन-तल पर चम्मच टूटा हुआ लगता है।

टूट कर एकबारगी से अपनी दिशा बदल देती है, वह मुड़ जाती है। इसलिए हिन्दी में इस संवृत्ति को अपवर्तन कहते हैं।

द्रव्य में प्रकाश-गमन के नियमों का पूर्ण अध्ययन प्रतिभावान अंग्रेज वैज्ञानिक मैक्सवेल की कृतियों के आधार पर किया गया है। मैक्सवेल ने एक समीकरण-तंत्र स्थापित किया जो वैद्युत तथा चुंबकीय दोलनरत (कंपमान) क्षेत्रों का आचरण निरूपित करता है। पता चला कि विद्यु-

चित्र 16a. प्रकाश-तरंग की संरचना।

चित्र 16b. एलेक्ट्रोनों का स्थानांतरण (1)।
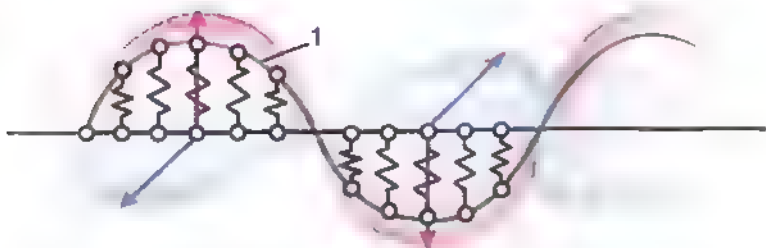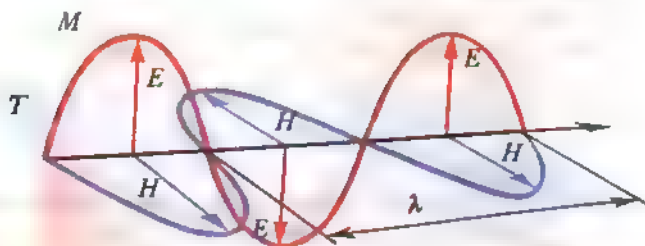
चुंबकीय (संक्षेप में विचु) तरंगों के प्रसरण का वेग प्रकाश-वेग के बराबर है और जब तरंगें निर्वात में प्रसर करती हैं तो उनका वेग उनकी लंबाई पर निर्भर नहीं करता। मैक्सवेल इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विचु और प्रकाशीय तरंगों की प्रकृति एक है। इस निष्कर्ष को आगे चलकर अनेक प्रयोगों ने सत्य सिद्ध किया। चित्र 16a में विचु तरंग या प्रकाश-किरण की संरचना दिखायी गयी है। तल M पर वैद्युत क्षेत्र E और तल T पर चुंबकीय क्षेत्र H दोलनरत हैं। तल M तथा T परस्पर लंब हैं। दूरी λ एक तरंग-लंबाई है।

चित्र 17. दोलनों की आवृत्ति तल A से इकाई समय में गुजरने वाली तरंग-लम्बाइयों की संख्या है। तरंग एक सेकेंड में दूरी c तक प्रसारित होती है और तल A से लम्बाई c की तरंग-लड़ी गुजरती है। प्रेक्षक तल A पर वैद्युत व चुंबकीय क्षेत्रों के दोलनों की दिशा में $\frac{c}{\lambda}$ बार परिवर्तन देखेगा।
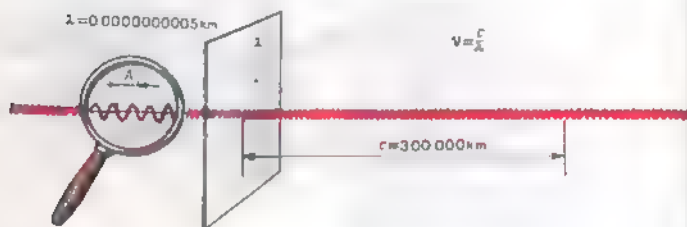
यदि चित्र 17 को ध्यान से देखा जाये, तो आसानी से समझा जा सकता है कि दोलनों की आवृत्ति (इकाई समय में दोलनों की संख्या) ν बराबर है प्रकाश-वेग (इकाई समय में तय की गयी दूरी) c बटा तरंग-लंबाई λ के : $\nu = \frac{c}{\lambda}$। हरे प्रकाश की किरण में वैद्युत तथा चुंबकीय क्षेत्र एक सेकेंड में ही 6 खरब (6×10^{11}) दोलन संपन्न करते हैं।

जब प्रकाश-किरण पारदर्शक द्रव्य में प्रविष्ट होती है, उसका बहुत तेजी से बदलता हुआ वैद्युत-क्षेत्र भारी-भरकम परमाणु-नाभिकों और आतरिक परमाणु-अभ्रों पर उसके साथ मजबूती से जुड़े एलेक्ट्रोनों को अपना दोलन देने में सफल नहीं हो पाता। वाह्य एलेक्ट्रोन, जो परमाणु के साथ इतनी मजबूती से नही जुड़े होते, प्रकाश-तरंगों के वैद्युत क्षेत्र के प्रभाव से सरलतापूर्वक उसकी गति दुहराते हुए स्थानांतरित होने लगते हैं (चित्र 16b)।

ऐसे एलेक्ट्रोन इस प्रकार आचरण करते हैं जैसे वे परमाणु-नाभिकों के साथ स्प्रिंगों के सहारे जुड़े हों। प्रकाशीय वैद्युत क्षेत्र द्वारा अपनी जगहों से स्थानांतरित होते हुए वे दोलन करने लगते हैं और उसी तरंग-लंबाई का उसी दिशा में प्रकाश उत्सर्जित करने लगते हैं जिस दिशा में आपतित विकिरण बढ़ता है। प्राथमिक (मूल) तरंग और एलेक्ट्रोनों के दोलन से उत्पन्न तरंग संयोजित होती हैं। परिणामी तरंग का वेग निर्वात में प्रकाश वेग से कम हो जाता है। प्रकाश एक परमाणु से दूसरे तक चरम वेग c से ही गमन करता है, पर समय नष्ट होता है एलेक्ट्रोनों के साथ व्यतिक्रिया में। फल यह होता है कि पारदर्शक द्रव्य में प्रकाश का प्रसरण निर्वात की तुलना में धीमी गति से होने लगता है।

भौतिकविदों ने हिसाब लगाया है कि निर्वात में प्रकाश के वेग c और पारदर्शक द्रव्य में उसके वेग v का अनुपात $1+\frac{A}{a^2-\nu^2}$ के बराबर होता है। इस सूत्र में a तथा A स्थिर राशियां हैं, जो प्रत्त द्रव्य की विशेषता बताती हैं, और ν प्रकाश-तरंगों के दोलन की आवृत्ति है। हवा, कांच, क्वार्ट्ज़, फ्लोराइट तथा अन्य पारदर्शक द्रव्यों के लिए स्थिरांक a प्रकाशीय दोलन की आवृत्ति ν से अधिक होता है, अतः सूत्र में दूसरा पद धनात्मक होता है और अनुपात $\frac{c}{v}$ इकाई से अधिक हो जाता है। इसका मतलब होता है कि द्रव्य में प्रकाश धीमी गति से गमन करता है बनिस्बत कि निर्वात में। प्रकाश-वेग और वेग v का अनुपात द्रव्य का अपवर्तनांक है : $n=1+\frac{A}{a^2-\nu^2}$।

इस सूत्र को ध्यान से देखें। अपवर्तनांक का मान दोलन की आवृत्ति के साथ-साथ बढ़ता है : जितना ही बड़ा ν होगा, उतना ही कम $a^2-\nu^2$ होगा, इसलिए राशि n का मान उतना ही अधिक होगा।

चित्र 18. स्पेक्ट्रम ।
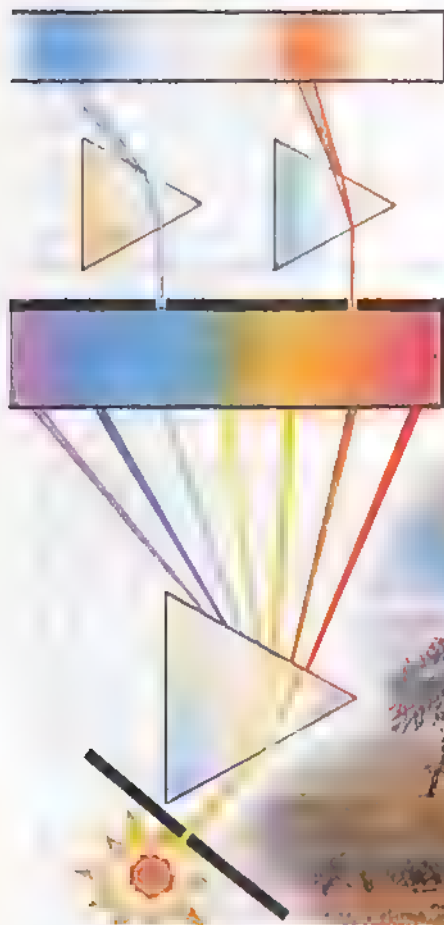
कांच के प्रिज्म का रहस्य. द्रव्य का अपवर्तनांक प्रकाश-तरंग के दोलनों की आवृत्ति के साथ-साथ बढ़ता है। इसीलिए श्वेत प्रकाश को, जिसमें सभी दोलन-आवृत्तियों वाली प्रकाश-तरंगें मिश्रित होती हैं, कांच के प्रिज्म से गुजारने पर अधिक दोलन-आवृत्ति वाली प्रकाश-किरणें अपनी आरंभिक दिशा से अधिक विचलित होती हैं बनिस्बत कि कम दोलन-आवृत्ति वाली किरणें। फलस्वरूप श्वेत किरण रंगीन किरणों में विघटित हो जाती है।

पहले-पहल न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि दिन का प्रकाश रंगीन किरणों के मिलने से बनता है। सौर प्रकाश को प्रिज्म से गुजार कर उन्होंने रंगीन पट्टियां प्राप्त कीं, जिसे **स्पेक्ट्रम** कहते हैं (चित्र 18)। न्यूटन के पहले श्वेत प्रकाश को लोग सरलतम प्रकाश मानते थे, यद्यपि स्पेक्ट्रम पहले भी प्राप्त होता था। सोचा जाता था कि स्पेक्ट्रम श्वेत प्रकाश पर प्रिज्म के द्रव्य की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

तनुपट के छेद द्वारा अलग की हुई रंगीन किरणों को प्रिज्म से गुजार कर न्यूटन ने सिद्ध किया कि वे अब और विघटित नहीं होतीं। ऐसी किरणों का नाम उन्होंने **एकवर्णी** रखा।

एकवर्णी विकिरण में प्रकाश-तरंग किसी नियत आवृत्ति से दोलन करती है। और तब पूर्ण रूप से सिद्ध करने के लिए कि श्वेत प्रकाश जटिल तरंग है, न्यूटन ने उसे एकवर्णी किरणों के मिश्रण से प्राप्त कर लिया।

न्यूटन के कार्य प्रकाश-घटकों के अन्वीक्षण में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुए। इस दिशा में आगे का विकास जर्मन वैज्ञानिकों बुंजेन और किर्खहोफ के नामों के साथ जुड़ा है।

बुंजेन की ढिबरी. एक बार जर्मन रसायनविद बुंजेन ने ध्यान दिया कि उनके द्वारा बनायी गयी बहुत गर्म ढिबरी की लौ में अनेक द्रव्य वाष्प में परिणत हो जाते हैं और लौ में अपना विशेष रंग उत्पन्न करते

हैं। उदाहरणार्थ, तांबा हरी लौ देता है, साधारण नमक पीला रंग देता है, स्ट्रौंशियम—बहुत हल्के बैंगनी के साथ तेज लाल (लाल बैंगनी)।

उम्मीद हुई कि द्रव्य को ढिबरी पर रखने भर की देरी है कि बिना लंबे-चौड़े रसायनिक विश्लेषणों के ही, सिर्फ लौ के रंग के आधार पर, द्रव्य के घटक निर्धारित हो जा सकते हैं। पर वास्तव में समस्या इतनी सरल नहीं निकली। बुंजेन को शीघ्र ही विश्वास हो गया कि भिन्न द्रव्य भी ऐसी लौएं दे सकते हैं जिनका रंग हमारी आंखों को एक जैसा लगे। वे इन प्रयत्नों से मुंह मोड़ने ही जा रहे थे कि भौतिकी के प्रोफेसर किर्खहोफ ने एक अप्रत्याशित हल निर्दिष्ट किया।

किर्खहोफ की सलाह पर रंगीन लौ का प्रकाश प्रिज्म से गुजारा गया। पता चला कि हर रसायनिक तत्त्व का स्पेक्ट्रम अन्य तत्त्वों के स्पेक्ट्रमों से भिन्न है। उदाहरणार्थ, लौ लीथियम के रंग में रंगी है या स्ट्रौंशियम के—यह आंख से देखकर निर्धारित करना असंभव है। दोनों ही स्थितियों में लौ हल्के बैंगनी मिले हुए गाढ़े लाल रंग की होती है। पर यदि "लीथियम की लौ" का प्रकाश प्रिज्म से गुजारा जाये, तो एक चमकदार रेखा के साथ हल्की नारंगी रेखा प्राप्त होगी। स्ट्रौंशियम से एक नीली, दो लाल, एक नारंगी और एक पीली रेखाएं मिलती हैं। इस प्रकार रसायनिक तत्त्वों के **स्पेक्ट्रमी विश्लेषण की विधि** ज्ञात हुई। वैज्ञानिकों ने प्रकाश की भाषा का अध्ययन किया और प्रकाश अपने को उत्सर्जित करनेवाले द्रव्य के रसायनिक गठन के बारे में बताने लगा।

सौर तत्त्व. बुंजेन और किर्खहोफ ने विश्लेषण की प्रकाशीय विधियों की खोज 1859 में की। इसके नौ वर्ष बाद फ्रांसीसी ज्योतिर्विद जान्सेन और अंग्रेज ज्योतिर्विद लौकियर ने परस्पर स्वतंत्र रूप से सूर्य में एक अज्ञात तत्त्व की खोज की, जिसका नाम हीलियम पड़ा (ग्रीक 'हेलिओस' से जिसका अर्थ 'सूर्य' है)। तत्त्व की खोज सौर स्पेक्ट्रम के विश्लेषण से हुई थी। यह एक जादू ही था। स्पेक्ट्रमदर्शी की सहायता से ऐसे द्रव्य

का अध्ययन हो सका, जो हमारे ग्रह से 15 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। पृथ्वी पर हीलियम इसके 27 वर्ष बाद अंग्रेज वैज्ञानिक रैमसे ने खनिज क्लेवेइट (**cleveit**—यूरेनियम आक्साइड के एक अयस्क) से प्राप्त किया।

प्रसारी ब्रह्मांड. स्पेक्ट्रमदर्शी के अन्य लाभ भी कम आश्चर्यजनक नही हैं। उदाहरणार्थ, इसकी सहायता से प्रकाशमान पिंडो की गति का वेग नापा जा सकता है। बात यह है कि प्रेक्षक से दूर जा रहे स्रोत के प्रकाश का स्पेक्ट्रम दीर्घ तरंगों के परास की ओर स्थानातरित रहता है (अर्थात स्पेक्ट्रम मे दीर्घ तरंगों वाला प्रकाश हावी रहता है)। यदि प्रकाश का स्रोत प्रेक्षक की ओर गतिमान होता है तो इसका स्पेक्ट्रम लघु तरगों की ओर झुका होता है (अर्थात स्पेक्ट्रम मे किसी लघु तरंग वाला प्रकाश हावी होता है)। यह **डोप्लर-प्रभाव** का निष्कर्ष है। इसी की सहायता से ज्योतिर्विदो ने सौर मंडल से दूर भागती मंदाकिनियों का वेग नापा है।

1912 में अमरीकी ज्योतिर्विद स्लाइफेर ने दूरस्थ मंदाकिनियों के स्पेक्ट्रम का अध्ययन आरंभ किया। मंदाकिनी की ओर निर्दिष्ट दूरबीन द्वारा जमा किया हुआ प्रकाश स्पेक्ट्रमदर्शी और स्पेक्ट्रम का विश्लेषण करने वाले उपकरण मे आता था। स्लाइफेर को आश्चर्य हुआ कि जाने-पहचाने तत्त्वों की स्पेक्ट्रमी रेखाएं वहां नहीं थी, जहां उन्हें होना चाहिए था—वे स्पेक्ट्रम के लाल वाले सिरे, अर्थात दीर्घ तरंगों की ओर स्थानातरित थीं। प्रथम दृष्टि में बात समझ में आने वाली नहीं थी।

तथ्य को एक ही तरह से समझाया जा सकता था—यह मानकर कि मंदाकिनियां बहुत बड़े वेग के साथ हम से दूर होती जा रही हैं (चित्र 19)। स्पेक्ट्रमी रेखाओं के स्थानांतरण के आधार पर हब्ल और ह्यूमेसन ने 1929 में हिसाब लगाया कि सौर मंडल से मंदाकिनी के दूर भागने का वेग V सूर्य से मंदाकिनी की दूरी r के साथ समानुपाती

चित्र 19. ऊपर—दूरगामी स्रोत के प्रकाश का स्पेक्ट्रम। नीचे—निकटगामी स्रोत के प्रकाश का स्पेक्ट्रम। बीच में—स्थिर स्रोत के प्रकाश का मानक स्पेक्ट्रम।
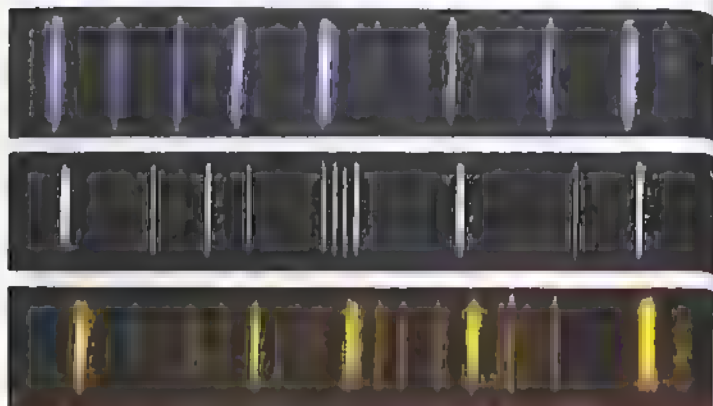
होता है : $V = \frac{r}{3 \cdot 10^{17}}$ । ज्ञात हुआ कि लगभग सभी मंदाकिनियां हम से दूर होती जा रही हैं और इनमें से कुछ का वेग लगभग प्रकाश-वेग का आधा है। ब्रह्मांड इस तरह से प्रसारमान है, यह निष्कर्ष सोवियत वैज्ञानिक फ्रीद्मान ने सन् 1922 में ही सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया था।

चुंबकीय द्वीप. स्पेक्ट्रमदर्शी से चुंबकीय क्षेत्र भी नापे जा सकते हैं। 1896 में हॉलैंड के वैज्ञानिक जेएमान **(Zeeman)** ने तप्त गैसों के स्पेक्ट्रम पर चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव का प्रेक्षण किया। पता चला कि शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र के अनुप्रस्थ उत्सर्जित कैडमियम-प्रकाश मूल आवृत्ति ν की रेखा के साथ-साथ आवृत्ति $\nu-\Delta\nu$ तथा $\nu+\Delta\nu$

चित्र 20. शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र में स्थित परमाणु चुंबकीय क्षेत्र की लम्ब दिशा में प्रकाश उत्सर्जित करते हैं, जिसकी मुख्य आवृत्ति ν और 'पार्श्व' आवृत्तियां $\nu+\Delta\nu$ तथा $\nu-\Delta\nu$ होती हैं। चुंबकीय क्षेत्र की अनुतीर दिशा में विकिरणित प्रकाश में आवृत्ति ν अनुपस्थित होती है। सिर्फ आवृत्तियों $\nu+\Delta\nu$ तथा $\nu-\Delta\nu$ की रेखाएं रह जाती हैं।

चित्र 21. स्पेक्ट्रोस्कोप का आरेख।
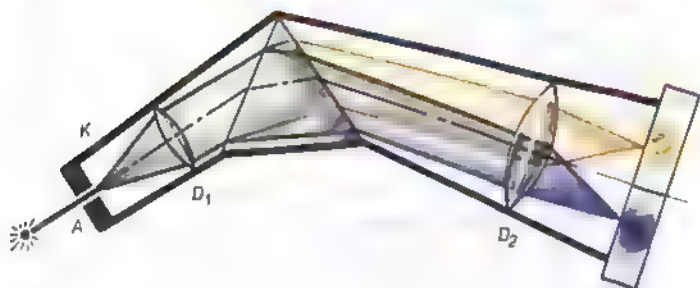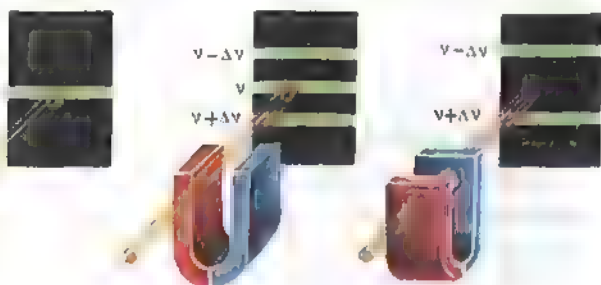
की साथी-रेखाएं भी देता है। चुंबकीय क्षेत्र के अनुतीर उत्सर्जित कैडमियम-प्रकाश के स्पेक्ट्रम में मूल आवृत्ति ν की रेखा अनुपस्थित रहती है, सिर्फ अगल-बगल की $\nu-\Delta\nu$ तथा $\nu+\Delta\nu$ आवृत्तियों की रेखाएं होती हैं। इसीलिए चुंबकीय क्षेत्र में स्थित चमकदार द्रव्य

के स्पेक्ट्रम द्वारा चुंबकीय क्षेत्र की शक्ति का ही नहीं, उसकी दिशा का भी ज्ञान संभव है (चित्र 20)।

गैलीली ने सूर्य के धब्बों का अवलोकन किया था, पर वह उनकी प्रकृति नही समझ पाये थे। अमरीकी वैज्ञानिक हेल ने 1908 में निर्धारित किया कि सूर्य के धब्बे विराट चुंबकीय द्वीप हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि धब्बों के विकिरण का स्पेक्ट्रम वैसा ही है, जैसा चुंबकीय क्षेत्र में स्थित उत्तप्त गैसों का।

स्पेक्ट्रमदर्शी. इतनी अनोखी खोजें उपलब्ध कराने वाले उपकरण की बनावट कैसी होती है?

स्पेक्ट्रमदर्शी का मुख्य अंग प्रिज्म है। प्रकाश-किरण उसके समतल फलक के साथ कोण θ बनाती हुई उसमें प्रविष्ट होती है और सर्व-ज्ञात नियमों के अनुसार अपवर्तित हो जाती है। उदाहरण के लिए, नीले और पीले एकवर्णी विकिरणों के मिलने से बना हुआ प्रकाश हरा दिखता है, आंख इस हरे और वास्तविक हरे प्रकाश में भेद नहीं कर सकती। स्पेक्ट्रमदर्शी में प्रिज्म से गुजर कर वास्तविक हरा प्रकाश पर्दे पर हरी पट्टी बनायेगा, लेकिन मिश्रण से बना हरा प्रकाश विघटित होकर नीली और पीली पट्टियां बनायेगा।

यह समझने के लिए चित्र 21 में स्पेक्ट्रमदर्शी का प्रकाशीय आरेख देखें। नली K को **कोलीमेटर** (लातीनी से: सीधी रेखा पर ले जाने वाली) कहते हैं।कोलीमेटरकीझिरी (दरार) A के पास प्रकाश का स्रोत रखते हैं, जिसके स्पेक्ट्रम का अध्ययन करना है। झिरी उत्तल लेंस D_1 के नाभिक तल पर स्थित है, इसलिए वह छेद से अन्दर आये हुए प्रकाश को समांतर किरण-पुंज में परिणत कर देती है। प्रिज्म से गुजर कर पुंज दो समांतर पुंजों में विघटित हो जाता है, जिनके अक्ष लेंस D_2 के प्रकाशीय अक्ष के साथ अलग-अलग कोण बनाते हैं। इसलिए लेंस D_2 के नाभिक तल पर दो रेखाएं बनती हैं—नीली और पीली; ये दरअसल

झिरी A के बिम्ब हैं। झिरी A अक्सर बहुत संकरी होती है इसलिए विभिन्न रंगों में प्राप्त उसके बिम्बों को **स्पेक्ट्रमी रेखाएं** कहते हैं।

हाल ही में स्पेक्ट्रमदर्शी की सहायता से कुछ तारों के विकिरण में टेक्नीशियम के अनुरूप स्पेक्ट्रम मिला है। यह एक ऐसा तत्त्व है जिसके परमाणु तपाक से विघटित हो जाते हैं; तारक द्रव्य में उनकी उपस्थिति इस बात की द्योतक है कि वहां परमाणुओं के जन्म की प्रक्रिया चल रही है। इन तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिकगण इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सुदूर तारों में भारी तत्त्वों के बनने की प्रक्रिया अभी भी जारी है।

आधुनिक स्पेक्ट्रमी उपकरणों में प्रिज्म की जगह अक्सर विवर्तन-जाली का उपयोग होता है। प्रिज्म की अपेक्षा विवर्तन-जाली भिन्न तरंग-लम्बाइयों की किरणों के विचलन-कोणों में अधिक बड़े अन्तर उत्पन्न कर देती है, इसलिए इसकी सहायता से प्रकाशीय स्पेक्ट्रमों के अधिक सूक्ष्म विवरण प्राप्त होते हैं। पहली जाली फ्राउनहोफेर ने बनायी थी जिसकी सहायता से उन्होंने सौर-विकिरण में संकीर्ण अंधेरी रेखाओं की खोज की। ये रेखाएं सौर "वातावरण" में उपस्थित तत्त्वों के वाष्पों द्वारा प्रकाश के अवशोषण के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं; इन्हें फ्राउनहोफेर-रेखाएं कहते हैं।

फ्राउनहोफेर की जाली कांच की प्लेट है जिस पर समांतर लकीरें (रेखाएं) खिची रहती हैं। लकीरें जितनी अधिक और पास-पास होंगी, स्पेक्ट्रमदर्शी की अनुमत क्षमता उतनी ही अधिक होगी। ऐसी जालियां भी हैं जिनकी प्रति मिलिमीटर दूरी पर 1000 से अधिक लकीरें होती हैं। इतनी बारीकी से लकीरें डालने के लिए विशेष मशीन का उपयोग होता है। परावर्तक जालियां भी होती हैं; ये धातु की दर्पणी सतह पर लकीरें खींचकर बनायी जाती हैं। ऐसी जाली प्रकाश को प्रकीर्णित करती है। इसमें किसी नियत तरंग-लम्बाई λ का प्रकाश जिस कोण φ पर प्रकीर्णित होता है, वह जाली में पास की लकीरों के बीच की दूरी D द्वारा निर्धारित होता है : $D \sin \varphi = m\lambda$, जहां m

कोई स्थिर पूर्ण संख्या है। लकीरों की आपसी दूरी जितनी कम होगी, भिन्न तरंग-लम्बाइयों की प्रकाश-किरणों के विचलन-कोणों में उतना ही अधिक अन्तर होगा। $m = 0$ होने पर तरंग-लंबाई कुछ भी हो, सभी किरणों का विचलन-कोण एक समान होता है—शून्य के बराबर। इसीलिए दिशा φ में श्वेत वर्ण-पट्टी मिलती है, जो विभिन्न तरंग-लम्बाइयों वाले विकिरणों का मिश्रण है। पर $m = 1$ से लेंस के नाभिक तल पर स्थित पर्दे पर अंधेरी और रंगीन पट्टियों की कतार प्रकट होने लगती है।

रसायनिक तत्त्वों के स्पेक्ट्रम. अब देखें कि स्पेक्ट्रमदर्शी की सहायता से रसायनिक तत्त्व का पता कैसे लगता है। प्लैटिनम के तार का सिरा साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) के घोल में गीला करके उसे बुंजेनी ढिबरी की लगभग रंगहीन लौ में घुमायें। यदि लौ कोलीमेटर की झिरी A के पास होगी तो नेत्रक में परस्पर बहुत पास स्थित दो पीली रेखाएं उत्पन्न होंगी। सोडियम के अन्य यौगिकों को लौ में रखने पर भी ऐसी ही रेखाएं दिखती है। पर यदि यौगिक में सोडियम अनुपस्थित होगा, तो इस तरह की रेखाएं कभी नहीं दिखेंगी। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि पीली रेखाएं सोडियम की हैं।

स्थापित किया गया है कि किसी भी रसायनिक तत्त्व का दीप्त वाष्प अपना एक विशेष स्पेक्ट्रम (एकवर्णी विकिरणों का सेट) देता है जो कोई दूसरा तत्त्व नहीं देता। हर एकवर्णी विकिरण स्पेक्ट्रम में एक रंगीन रेखा देता है। इस तरह का अलग-अलग रेखाओं से बना हुआ स्पेक्ट्रम **रेखित** (लाइनदार) कहलाता है। सभी तत्त्वों की स्पेक्ट्रमी रेखाएं सारणी के रूप में संग्रहीत की जा चुकी हैं। उसमें तत्त्व के स्पेक्ट्रम की तरंग-लंबाइयां, स्पेक्ट्रमी रेखाओं की तीव्रता और उनका क्रम निर्दिष्ट रहते हैं। इस सारणी के सहारे द्रव्य में किसी तत्त्व के बहुत कम मात्रा में होने पर भी स्पेक्ट्रम के आधार पर उसकी उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

यदि आप प्लैटिनम का तार कुछ देर तक अपने हाथ में रखते हैं और इसके बाद उसे ढिबरी की लौ में घुमाते हैं, तो स्पेक्ट्रमदर्शी के पर्दे पर तुरंत सोडियम की रेखाएं नजर आयेंगी। इसका कारण यह है कि पसीने के कारण हाथ में साधारण नमक किसी न किसी मात्रा में हमेशा ही उपस्थित रहता है; वह तार से लग जाता है, जो स्पेक्ट्रमदर्शी के लिए पर्याप्त है। सोडियम और पोटेशियम की उपस्थिति का पता उस हालत में भी लग जाता है, जब किसी अज्ञात मिश्रण में वे मात्रा के अरबवें अंश तक में उपस्थित रहते हैं।

डोप्लर-प्रभाव. इंजन की सीटी का सुर ऊंचा होने लगता है, जब रेलगाड़ी प्रेक्षक की ओर गतिमान होती है; प्रेक्षक से दूर जा रही गाड़ी की सीटी का सुर नीचा होने लगता है। प्रकाश के साथ भी यही बात होती है। प्रेक्षक के लिए प्रकाश की आवृत्ति बदलने लगती है, जब प्रकाश-स्रोत उसके सापेक्ष गतिमान होता है। यदि अंतरिक्ष में चौराहे होते और फोटोन-राकेट का चालक समय पर गति धीमी करना भूल जाता तो उसे लाल बत्ती हरी दिखायी देती। चालक बिना रुके चौराहा पार कर लेता और साथ ही अंतरिक्ष-पथ पर राकेट चलाने का नियम तोड़ देता।

यदि प्रेक्षक अपनी ओर आने वाली प्रकाश-तरंगों की ओर खुद भी गतिमान हो जाये (वेग v से), तो प्रकाश-तरंग की आवृत्ति उसके लिए अधिक होगी, बनिस्बत कि प्रकाश-स्रोत के सापेक्ष स्थिर खड़े प्रेक्षक के लिए।

प्रकाश-स्रोत की ओर उड़ते काल्पनिक फोटोन-राकेट से प्रकाश लाल की बजाय हरा दिखे, इसके लिए राकेट का आवश्यक वेग सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है; इस वेग का मान होगा 97 000 km/s।

एक-दूसरे के सापेक्ष प्रकाश-स्रोत और प्रेक्षक की गति के कारण

चित्र 22. डोप्लर-प्रभाव।

प्रकाश-तरंग में परिवर्तन **डोप्लर-प्रभाव** कहलाता है। इस प्रभाव के कारण स्पेक्ट्रमी अध्ययन अक्सर कठिन हो जाता है। आधुनिक उपकरण ऐसी स्पेक्ट्रमी रेखाएं अलग करते हैं, जिनकी तरंग-लंबाइयों में सिर्फ 0.0002 nm ($2\cdot10^{-13}$ m) का अंतर होता है। लेकिन इससे एक-दूसरे के बहुत निकट स्थित स्पेक्ट्रमी रेखाओं के बीच भेद करने में सहायता नही मिलती। तप्त गैस मे परमाणु विभिन्न दिशाओं में गतिमान रहते हैं। स्पेक्ट्रमदर्शी से दूर जा रहे परमाणु द्वारा उत्सर्जित क्वांटम की तरंग-लंबाई दीर्घ तरंगों के क्षेत्र में स्थानांतरित हो जायेगी और इसके विपरीत, स्पेक्ट्रमदर्शी की ओर गतिमान परमाणु द्वारा उत्सर्जित क्वांटम की तरंग-लंबाई लघु तरंगों की ओर खिसक आयेगी। परमाणु की स्पेक्ट्रमी रेखा उसकी गति के कारण एक तरह से विस्तृत परास बनाने लगती है।

ढिबरी की लौ में परमाणु बेतरतीबी के साथ करीब 1000 m/s वेग से गति करते रहते हैं। स्पेक्ट्रमदर्शी के लेंस के नाभिक तल की ओर उड़ते परमाणु के विकिरण की तरंग-लंबाई 0.003 nm कम होगी बनिस्बत कि विपरीत दिशा मे उडते परमाणु के उसी तरंग-लंबाई (0.5 µm) वाले विकिरण से, अतः पर्दे पर परमाणु की रेखा 0.003 nm चौड़ी नजर आयेगी। चौडाई में यह विस्तार अन्वीक्षकों को रेखा की वास्तविक संरचना का अवलोकन करने में बाधक होता था। उदाहरण के लिए सोडियम की पीली स्पेक्ट्रमी रेखा लें। यह समज है या कई रेखाओं के मिलने से बनी हुई विषमज है? इस प्रश्न का उत्तर तेरेनिन और दोब्रेत्सोव के एक अनोखे प्रयोग ने दिया।

वैज्ञानिकों ने सोडियम-परमाणुओं का एक पतला संदीप्त पुंज उत्पन्न किया और स्पेक्ट्रमदर्शी के कोलीमेटर को इसके अभिलंब स्थापित किया। पुंज के विकिरण की आवृत्ति में परिवर्तन परमाणु-वेग के उस

97000 km/h
500 km/h
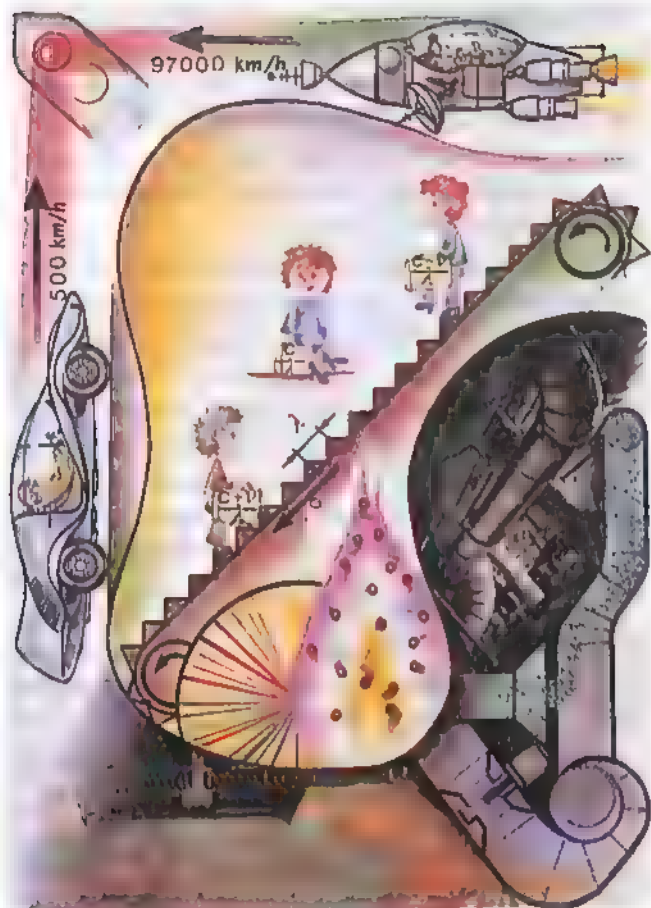
घटक के साथ समानुपाती है, जो प्रेक्षक की दिशा में या इसके विपरीत है। जब प्रेक्षक पुंज को पार्श्व से देखता है, तो वेग का यह घटक शून्य होता है। इस स्थिति में रेखा का "विस्तार" नहीं हो पाता, और पास सटी रेखाओं की रचना स्पष्ट हो जाती है। तेरेनिन और दोब्रेत्सोव ने देखा कि सोडियम की दोनों ही रेखाएं ($D_1\lambda = 0.5896$ μm तथा $D_2\lambda = 0.5890$ μm) दुहरी हैं। इस प्रकार परमाणु की स्पेक्ट्रमी रेखाओं की अतिसूक्ष्म संरचना ज्ञात हुई।

इस खोज के बाद स्पेक्ट्रमी रेखाओं की जटिल संरचना का कारण भी स्पष्ट किया गया। पता चला कि अतिसूक्ष्म संरचना परमाणुनाभिक और इस के एलेक्ट्रोनी अभ्र की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

गतिमान वस्तु से परावर्तित लेसर-विकिरण की आवृत्ति में परिवर्तन स्थिर स्रोत के लेसर-पुंज या स्थिर वस्तु से परावर्तित लेसर-पुंज की आवृत्ति की तुलना में अधिक शुद्धता से ज्ञात किया जा सकता है। इस परिवर्तन के आधार पर द्रव या गैस की धारा में बहते कण का वेग कलित करना भी कठिन नहीं रह जाता, जिसकी आवश्यकता कई व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में पड़ती है। द्रव की गति का अन्वीक्षण करते वक्त प्रयोगकर्ता उसकी धारा में कण मिला देता है। इन कणों के वेग से धारा के विभिन्न स्थलों पर द्रव का वेग ज्ञात होता है। इस तरह पेट्रोल-पाइप, शक्तिशाली पंप, नहर और बांध बनाने के लिए आवश्यक आंकड़े प्राप्त किये जाते हैं।

यदि कण का वेग v ऐसा है कि $v \ll c$ है (व्यवहार में हमेशा ऐसा ही होता है) तो $\nu = \nu_0 \left(1 + \frac{v}{c} \right)$ होता है। यह सूत्र बिल्कुल सरल विचारों से प्राप्त किया जा सकता है। मान लें कि हम प्रकाशीय दोलनों की ज्यावत रेखा के "शिखर" (उच्चिष्ठ) गिन रहे हैं। यदि प्रकाश का स्रोत प्रेक्षक के सापेक्ष अचल है, तो इकाई समय में प्रकाश-

तरंग पथ c तय करेगी और प्रेक्षक के पास से $m=\frac{c}{\lambda}$ शिखर गुजरेंगे।

प्रकाश-स्रोत की दिशा में गति v से चलने पर हमें उसी (इकाई) समय में $\frac{c+v}{\lambda}$ शिखर मिलेंगे। इकाई समय में प्राप्त शिखरों की संख्या ही आवृत्ति ν है। अब, $\nu_0=\frac{c}{\lambda}$ है; अतः $\nu=\frac{c+v}{\lambda}=\nu_0+\nu_0\frac{v}{c}=\nu_1\left(1+\frac{v}{c}\right)$ है और वेग $v=\frac{\Delta\nu}{\nu_0}c$ है। लेसर की विकिरण-आवृत्ति ν_0 ज्ञात है। $\Delta\nu$ को आधारी लेसर-पुंज और गतिशील कण से उसी लेसर के परावर्तित विकिरण के व्यतिकरण द्वारा निर्धारित करते हैं। चित्र 22 में गतिमान जीना दिखाया गया है; स्थिर प्रेक्षक को सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते प्रेक्षक की अपेक्षा समान समय में अधिक सीढ़ियां गुजरती नजर आयेंगी। इकाई समय में आंख के सामने से गुजरती सीढ़ियों की संख्या ज्ञात करने के लिए वे ही सूत्र काम आते हैं जो प्रकाश की आवृत्ति ν ज्ञात करने में: यहां λ एक सीढ़ी की लंबाई होगी, c और v क्रमशः जीने और आदमी के वेग होंगे।

मिला-जुला प्रकीर्णन. 1927 में भारतीय वैज्ञानिक चंद्रशेखर वेंकटरमण द्रवों में प्रकाश के प्रकीर्णन का अध्ययन कर रहे थे। करीब इसी समय सोवियत भौतिकविद लान्द्सबेर्ग और मांदेलश्ताम ठोस पारदर्शक पिंडों में प्रकीर्णित प्रकाश के स्पेक्ट्रम का अध्ययन कर रहे थे। दोनों देशों के वैज्ञानिकों ने स्वतंत्र रूप से पाया कि स्पेक्ट्रम में प्रकाश-स्रोत की रेखाओं के अतिरिक्त उनके दोनों ओर नयी रेखाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस संवृत्ति का नाम **रमण-प्रभाव** पड़ा है। इसे **संमिश्र प्रकीर्णन** भी कहते हैं।

प्रकाश के संमिश्र प्रकीर्णन का सार क्या है? जब ऊर्जा $h\nu$ से

युक्त क्वांटमों का प्रवाह द्रव के अणुओं से टकराता है, तो अणु फोटोनों के साथ अपनी ऊर्जा का विनिमय कर ले सकते हैं। संमिश्र प्रकीर्णन में प्रकाश के बाह्य स्रोत का फोटोन अणु द्वारा अवशोषित हो जाता है और तुरंत ही एक दूसरा फोटोन उत्सर्जित हो जाता है। इस प्रक्रिया में फोटोन की ऊर्जा बढ़ या घट जाती है—द्रवाणु के उद्दीपन की ऊर्जा ΔE वाले क्वांटम द्वारा। यदि अणु अनुद्दीप्त अवस्था में होता है तो फोटोन अपनी ΔE ऊर्जा उसे प्रदान कर देता है, लेकिन जब अणु उद्दीप्त अवस्था में होता है तो संभव है कि फोटोन उससे ΔE ऊर्जा प्राप्त कर लेगा। फलस्वरूप ऊर्जा $h\nu+\Delta E$ तथा $h\nu-\Delta E$ वाले फोटोन उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार, प्रकाश-स्रोत की स्पेक्ट्रमी रेखाओं के 'साथियों' में एक रोचक गुण होता है : उनकी आवृत्ति स्रोत से पिंड पर आपतित प्रकाश की आवृत्ति और उद्दीपन से संबंधित अणु की निजी आवृत्ति के योग से उत्पन्न होती है।

नाइट्रोबेंजोल में से गुजरने पर लेसर-किरण में 40 अरब हर्ट्स आवृत्ति की कमी आ जाती है। यही नाइट्रोबेंजोल की लंछक आवृत्ति है।

लेसर-विकिरण की क्रिया से द्रव्य में रमण-विकिरण के फोटोनों का काफी बड़ा प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। यदि, उदाहरण के लिए, नाइट्रोबेंजोल से फोटोन बारंबार गुजरते जायेंगे, तो उनके पीछे उतनी ही ऊर्जा वाले नये-नये फोटोन निकलते जायेंगे। इस संवृत्ति को **बाध्य संमिश्र प्रकीर्णन** कहते हैं। इस प्रक्रिया में लेसर-ज्योतिप्रवाह का अधिकांश भाग पहले की तुलना में छोटी या बड़ी तरंग-लंबाई वाले प्रकाश में परिणत हो जाता है।

यदि लेसर-विकिरण को तीव्र पुंज के रूप में संकेंद्रित किया जाये और उसे द्रव, ठोस तथा गैसीय पिंडों से गुजारा जाये, तो अनेक स्थितियों में तीव्र रमण-विकिरण प्राप्त हो सकता है। स्पेक्ट्रम के

चित्र 23. एक अवस्था से (जब प्रोटोन तथा एलेक्ट्रोन विपरीत दिशाओं में घूर्णन करते हैं) दूसरी अवस्था में (जब दोनों समान दिशा में घूर्णन करते हैं) संक्रमण करते समय हाइड्रोजन का परमाणु 21 cm तरंग-लम्बाई वाले विकिरण के अनुरूप ऊर्जा उत्सर्जित करता है।
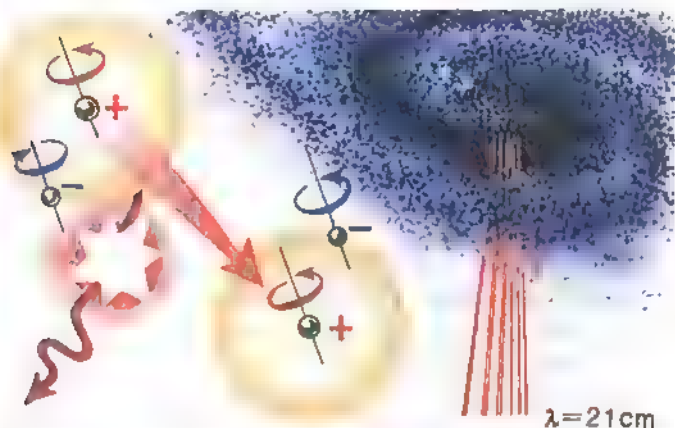
पराबैंगनी और अवरक्त क्षेत्रों में स्थित तरंग-लंबाइयों वाले संसक्त विकिरण इसी तरह से प्राप्त होते हैं। इस तरह से स्पेक्ट्रम के नये क्षेत्रों वाले विकिरण मिलते हैं, जिनकी तरंग-लंबाइयां पराबैंगनी और अवरक्त परासों में होती हैं।

अंतरिक्ष के संदेशो. सबसे सरल बनावट है हाइड्रोजन के परमाणु की। वह दो प्राथमिक कणों से बना होता है—एक प्रोटोन और एक एलेक्ट्रोन से। जब एलेक्ट्रोन प्रोटोन के गिर्द निकटतम कक्ष पर भ्रमण करता है, हाइड्रोजन के परमाणु में न्यूनतम ऊर्जा जमा रहती है; यह हाइड्रोजन-परमाणु की मुख्य अवस्था है। पर प्रोटोन और एलेक्ट्रोन के बीच व्यतिक्रिया सिर्फ उनके आवेशों के कारण ही नहीं होती, वे निजी

घूर्णन द्वारा भी एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं (चित्र 23)। जब एलेक्ट्रोन और प्रोटोन अपने-अपने अक्षों के गिर्द समान दिशा (जैसे घड़ी की सुई की दिशा) मे घूर्णन करते हैं तो वे आपस में अधिक मजबूती से जुड़े रहते हैं, बनिस्वत कि तब, जब वे विपरीत दिशाओं में घूर्णन करते हैं। इसका मतलब है कि पहली स्थिति मे परमाणु कम ऊर्जा रखता है और दूसरी मे—कुछ अधिक। जब एलेक्ट्रोन और प्रोटोन असमान दिशाओं मे घूर्णन करते हैं, तो परमाणु के पास ऊर्जा का अतिरिक्त भंडार होता है जिसे परमाणु खर्च कर सकता है; खर्च कर देने के बाद एलेक्ट्रोन और प्रोटोन पुनः समान दिशा में घूर्णन करने लगते हैं। परमाणु का ऐसा अवस्था-संक्रमण या तो किसी अन्य परमाणु के साथ टक्कर के फलस्वरूप संभव है जब परमाणु अपनी अतिरिक्त ऊर्जा दूसरे परमाणु को दे देता है, या अतिरिक्त ऊर्जा के उत्सर्जन के फलस्वरूप संभव है, जब हाइड्रोजन-परमाणु स्वयं विद्युत-चुंबकीय विकिरण का 21 cm तरंग-लंबाई वाला क्वांटम उत्सर्जित करता है।

पार्थिव परिस्थितियों में गैस के परमाणु अपने "पड़ोसी" परमाणुओं या बरतन की दीवारों के साथ प्रति सेकेंड करोड़ों बार टकराते रहते हैं, पर हाइड्रोजन परमाणु अपनी ऊर्जा 21 cm वाले क्वांटम के रूप में स्वतःस्फूर्त उत्सर्जित कर दे, यह घटना औसतन 110 लाख वर्ष में एक बार सम्भव है! इसीलिए पार्थिव परिस्थितियों में परमाणु को 21 cm तरंग-लंबाई के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित करने का मौका ही नहीं मिलता। उसकी यह ऊर्जा, टक्कर के फलस्वरूप, अन्य रूपों में परिणत हो जाती है।

अंतरिक्ष मे बात दूसरी है। वहां परमाणु एक-दूसरे से बहुत दूर होते हैं और टक्करें बहुत कम होती हैं: औसतन 300 वर्षों में एक बार।

1944 मे हॉलैंड के एक छात्र-भौतिकविद वान डे हुल्स्ट ने लेइडेन विश्वविद्यालय मे एक प्रतिवेदन पढ़ा। इसमें उसने विचार प्रस्तुत किया

कि अंतरिक्ष में हाइड्रोजन-परमाणु को 21 cm की रेडियो-तरंग उत्सर्जित करनी चाहिए।

उस समय हॉलैंड फासीवादियों के कब्जे में था। विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों के बीच विचारों का आदान-प्रदान संभव नहीं था। वान डे हुल्स्ट का विचार दुनिया के वैज्ञानिकों तक 1947 में ही पहुंच सका।

सोवियत ज्योतिर्भौतिकविद श्क्लोव्स्की ने रोचक और महत्वपूर्ण कलन किये। पता चला कि अंतरिक्ष में उपस्थित हाइड्रोजन के विकिरण का पता लगाना पूर्णतया संभव है। इस विकिरण के अन्वीक्षण से अंतरातारकीय द्रव्य की गति और अंतरातारकीय व्योम की संरचना के बारे में सूचनाएं प्राप्त होती हैं। 21 cm तरंग-लंबाई का विकिरण प्राप्त करके वैज्ञानिकों ने मंदाकिनियों की संरचना और गति का अध्ययन किया है। अंतरातारकीय द्रव्य के विकिरण का अन्वीक्षण जारी है।

"सुरीले" एलेक्ट्रोन. यदि ऐसे नाभिकीय रिएक्टर में झांका जाये जिसमें यूरेनियम की छड़ पानी में डूबी रहती है, तो छड़ के गिर्द एक नीली चमक दिखेगी। इस विकिरण की खोज प्रथम रिएक्टर की स्थापना के बहुत पहले ही लेनिनग्राद में सोवियत भौतिकविद चेरेन्कोव ने की थी।

विरल (अत्यल्प घनत्व वाली) गैसों तथा तप्त ठोस पिंडों के परमाणु कोई ऊर्जा (जैसे प्रकाशीय ऊर्जा) अवशोषित करके उद्दीप्त अवस्था में आ सकते हैं और प्रकाश-विकिरण के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन कर सकते हैं। जब परमाणु द्वारा ऊर्जा का उत्सर्जन उसके अवशोषण के तुरंत बाद नहीं, एक नियत काल के बाद होता है, तो ऐसे विकिरण को **संदीप्ति** कहते हैं।

रेडियम की γ-किरणों के प्रभाव में यूरेनियम के लवणों की संदीप्ति का अध्ययन करते वक्त चेरेन्कोव ने ध्यान दिया कि बहुत क्षीण ही सही, पर पानी भी चमकने लगता है यद्यपि ये लवण उसमें

अनुपस्थित रहते हैं। शुरू में उन्होंने सोचा कि चमक द्रव में मिली अशुद्धियों के कारण उत्पन्न होती है, पर परीक्षणार्थ प्रयोगों ने इस विचार को गलत सिद्ध कर दिया। पहली बात कि γ-किरणों के प्रभाव में शुद्ध द्रव भी चमकते हैं। इसके अतिरिक्त, पोटाशियम आयोडाइड या सिल्वर नाइट्रेट जैसा कोई यौगिक द्रव में मिलाकर उसकी संदीप्ति बुझायी भी जा सकती है। पर चेरेन्कोव द्वारा आविष्कृत विकिरण बुझाना संभव नहीं हुआ। इसलिए प्रेक्षित विकिरण का संदीप्ति के साथ कोई संबंध नहीं था। अब निर्धारित करना था कि इस अज्ञात विकिरण की प्रकृति क्या थी।

गामा-किरणें के प्रकाश की तरह ही विद्युचुंबकीय दोलन हैं। फर्क यही है कि रेडियम द्वारा (उदाहरण के लिए) उत्सर्जित γ-क्वांटम की ऊर्जा हरे प्रकाश के क्वांटम की ऊर्जा से सैकड़ों हजार गुना अधिक होती है। द्रव्य से गुजरते वक्त γ-क्वांटम अपनी ऊर्जा का एक अंश एलेक्ट्रोनों को दे देते हैं जिससे एलेक्ट्रोन अधिक वेग से गतिशील हो जाते हैं। क्या एलेक्ट्रोनों की इस गति के कारण ही द्रव में चमक उत्पन्न हो जाती है?

एलेक्ट्रोनों की गति की दिशा, उदाहरण के लिए चुंबकीय क्षेत्र की सहायता से, बदली जा सकती है। चेरेन्कोव द्वारा संपन्न बाद के प्रयोगों ने दिखाया कि चमक परीक्षणाधीन द्रव से गुजरने वाले चुंबकीय क्षेत्र की दिशा पर बहुत ज्यादा निर्भर करती है (चित्र 24)। इसका मतलब है कि चमक सचमुच एलेक्ट्रोनों से उत्पन्न होती है। अकादमीशियन वावीलोव ने, जिनकी देख-रेख में चेरेन्कोव प्रयोग कर रहे थे, विकिरण के अधीन द्रव की चमक को द्रव्य में वैद्युत आवेशों के मंदन से समझाने का प्रस्ताव दिया। आवेश का वेग-ह्रास विद्युचुंबकीय (विचु) क्षेत्र में परिवर्तन लाता है और विचु क्षेत्र में परिवर्तन के साथ-साथ हमेशा ही विकिरण भी होता है।

पर यह बात सही सिद्ध नहीं हुई। कलन दिखा रहे थे कि इस

चित्र 24. चित्र में निर्दिष्ट दिशा में द्रव से गुजरने वाला चुंबकीय क्षेत्र दिशा AB में उड़ते एलेक्ट्रोनों को नीचे की ओर विचलित कर देता है। प्रकाश एलेक्ट्रोन पथ के निकट की दिशाओं में प्रसरण करता है। जब एलेक्ट्रोन नीचे की ओर विचलित होते हैं प्रेक्षक की आंख में प्रकाश की निम्नतम मात्रा पहुंचती है। यदि चुंबकीय क्षेत्र की दिशा बदल दी जाये, तो प्रेक्षक द्वारा अनुभूत प्रदीप्ति की चमक बढ़ जायेगी, क्योंकि इससे एलेक्ट्रोन प्रेक्षक की ओर ऊपर विचलित होंगे।
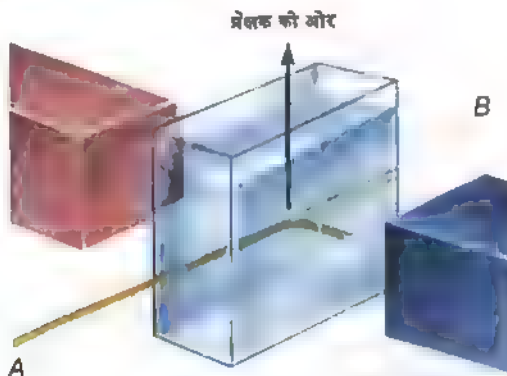
स्थिति में प्रयोग से प्राप्त चमक की अपेक्षा सैकड़ों गुना क्षीण चमक प्राप्त होनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त, मंदन-जनित विकिरण द्रव की परमाणु-संख्या पर बहुत अधिक निर्भर करता है, लेकिन चेरेन्कोव के प्रयोग में विकिरण की चमक परमाणु-संख्या पर निर्भर नहीं कर रही थी।

इस प्रकार वैज्ञानिकों को मानना पड़ा कि यह प्रकाश-विकिरण का कोई नया और अज्ञात रूप है।

बंदूक की समरूपता से गतिमान गोली की उड़ान के साथ एक

चित्र 25 'सुरीले' एलेक्ट्रोनों की उत्पत्ति।
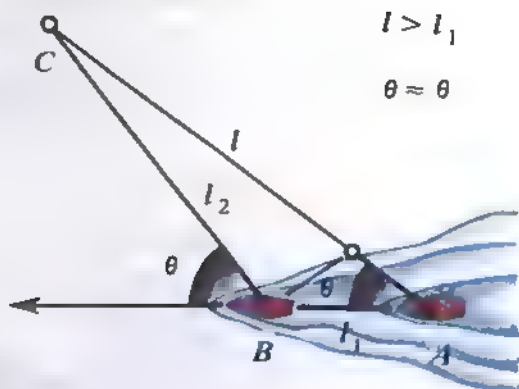
सिस्कार भी होती है। कह सकते हैं कि जब गोली हवा में ध्वनि-वेग (330 m/s) से अधिक तेज उड़ती है, तो वह एक "सुर-लहरी" छोड़ती जाती है। जब गोली की गति 330 m/s से कम होती है तो वह बिना किसी आवाज के उड़ती है।

गोली का वेग v से और ध्वनि का वेग u से द्योतित करते हैं। गोली के गतिपथ का हर विंदु संनादी दोलनों का स्रोत होता है, जो वेग u से प्रसर करते हैं।

बिन्दु A से (चित्र 25) बिन्दु C तक ध्वनिक दोलन को पहुंचने में समय $\frac{l}{u}$ लगेगा और बिन्दु B से समय $\frac{l_2}{u}$ लगेगा। पर बिन्दु B पर उसकी (दोलन की) उत्पत्ति, समय $\frac{l_1}{u}$ बीतने के बाद होती है (बिन्दु A पर उत्पन्न होने के बाद)। इसलिए बिन्दु B से चले हुए

दोलन विन्दु A से आये हुए दोलनों की अपेक्षा कुछ समय (τ) वाद ही विन्दु C पर पहुंच सकेंगे, जहां

$$\tau=\frac{l_1}{v}+\frac{l_2}{u}-\frac{l}{u}=l_1\left(\frac{1}{v}-\frac{\cos\theta}{u}\right)$$

यदि v कम u अधिक ($v < u$) है, तो संयोजन के कारण दोलन वंद हो जायेगा और गोली के उड़ने से कोई आवाज नहीं निकलेगी। यदि v अधिक u कम ($v > u$) है, तो ध्वनि-तरंगों की सरहद गोली उड़ने की दिशा के साथ कोण θ वनाती हुई फैलेगी। यह कोण निम्न शर्त द्वारा निर्धारित होता है :

$$\frac{1}{v}-\frac{\cos\theta}{u}=0 \text{ या } \cos\theta=\frac{u}{v}$$

ये वातें सिर्फ ध्वनि-तरंगों के लिए ही नहीं, किन्हीं भी अन्य (यहां तक कि एलेक्ट्रोनी) तरंगो के लिए भी सही हैं। जव द्रव्य में एलेक्ट्रोन स्थिर वेग से गति करता है, तो उसके पथ के हर विन्दु पर विद्यु तरंगें उत्पन्न होती हैं।

यदि एलेक्ट्रोन का वेग कम है और विद्यु दोलनों का प्रसर-वेग अधिक है, तो तरंगें व्यतिकरण के फलस्वरूप वुझ जाती हैं; ठीक वैसे ही, जैसे हवा में गोली के उड़ने के समय।

एलेक्ट्रोन भी गोली की तरह "आवाज" निकाले, अर्थात द्रव्य में अपनी गति के कारण प्रकाश उत्पन्न करे, इसके लिए जरूरी है कि उसका वेग प्रकाश-वेग से अधिक हो।

लेकिन प्रकाश का वेग तो अंतिम सीमा है जिसे कोई भी गतिमान कण पार नहीं कर सकता ! हां, यह ठीक है, पर सिर्फ निर्वात में। द्रव्य में प्रकाश का वेग $\frac{c}{n}$ के वरावर है (n—अपवर्तनांक, c—निर्वात में प्रकाश-वेग)। इसीलिए रेडियम के γ-क्वांटम से पर्याप्त

चित्र 26. पानी में एलेक्ट्रोनों का वेग अधिक है बनिस्बत कि पानी में प्रकाश का वेग।
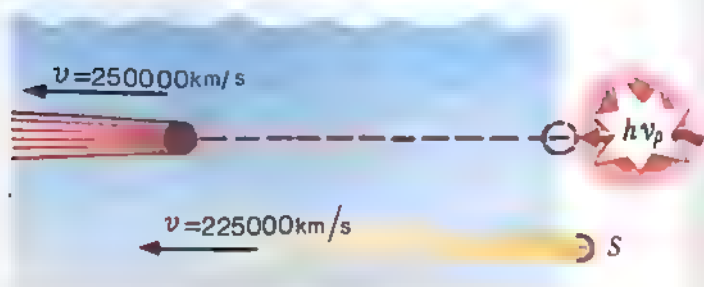
ऊर्जा प्राप्त करके, एलेक्ट्रोन $\frac{c}{n}$ से अधिक वेग प्राप्त कर सकता है। रेडियम की गामा-किरणें एलेक्ट्रोन को 250 000 km/s वेग तक त्वरित कर सकती हैं। पानी का अपवर्तनांक 1.333 है, अत. $\frac{c}{n}$ = 225 000 km/s है। इसका मतलब है कि पानी में एलेक्ट्रोन प्रकाश से अधिक तेज चल सकता है (चित्र 26)।

1937 में सोवियत भौतिकविद ताम्म और फ्रांक ने चेरेन्कोव द्वारा प्राप्त चमक की यही व्याख्या की। प्रयोगों ने उनके सैद्धांतिक निष्कर्षों का समर्थन किया। सोवियत वैज्ञानिकों की खोज से इस विकिरण के अनेक लक्षण ज्ञात हुए; यथा : एलेक्ट्रोन के पथ और उसके विकिरण के बीच का कोण, विकिरण की तीव्रता, एलेक्ट्रोन के वेग पर उसकी निर्भरता, उसके स्पेक्ट्रमी घटक।

हमारे समय में **वाविलोव-चेरेन्कोव-प्रभाव** ने उच्च ऊर्जावान

नाभिकीय कणों के प्रभाव से चलने वाली प्रक्रियाओं के अध्ययन मे नयी संभावनाओं को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए, इसके आधार पर क्षिप्र (अति वेगवान) प्रोटोनों के पंजीकारी उपकरण बनाये जाते हैं।

प्रकाश का ध्रुवण. फ्रांसीसी वैज्ञानिक एतिएन माल्यूस दिन भर के काम से थककर सूर्यास्त का सौंदर्य निहार रहे थे। सौर किरणें सेना नदी के विपरीत तट पर स्थित लुक्सेमबुर्ग राजमहल की खिड़कियों से परावर्तित हो रही थी। संयोगवश माल्यूस अपने हाथ में आइसलैंड स्पाट का एक क्रिस्टल लिये हुए थे। बचपन मे एतिएन को रंगीन शीशे के टुकड़ों से आकाश देखना बहुत भाता था. इसी आदत के कारण वह क्रिस्टल को भी आंख के पास ले आये। क्रिस्टल को घुमाने पर उन्होंने देखा कि खिडकी से परावर्तित प्रकाश मद्धिम हो गया है। क्रिस्टलिक पट्टी को घुमाने जाने पर खिडकी कभी प्रकाशमान, तो कभी अंधेरी होती जाती थी! माल्यूस ने इस नवीन संवृत्ति को प्रयोगशाला में जांचा। पता चला कि शीशे, खनिज या किसी चमकीली सतह से परावर्तित होने के बाद सिर्फ सूर्य का ही नही, किसी भी स्रोत का प्रकाश आइसलैंड स्पाट के क्रिस्टल से गुजरते समय अपनी चमक क्रिस्टल के घूर्णन-कोण के अनुसार बदलता रहता है।

प्रकाश-किरणों के इस गुण का नाम 1808 मे माल्यूस ने **प्रकाश का ध्रुवण** रखा। उस समय से यह नाम आज भी प्रयुक्त हो रहा है। प्रकाश-ध्रुवण की संवृत्ति के आधार पर घोल की सांद्रता नापते है, जटिल संरचनाओं मे उपस्थित यांत्रिक प्रतिबल निर्धारित करते हैं। लेसर के लिए और जल्द चित्र देने वाले कैमरे के लिए क्षिप्र प्रकाशीय कपाट (शटर) भी इसी पर आधारित हैं।

प्रकाश-तरंगो के ध्रुवण की प्रकृति क्या है? सूर्य द्वारा उत्सर्जित नैसर्गिक प्रकाश मे वैद्युत तथा चुंबकीय सदिश, प्रकाश-प्रसार की दिशा

के अभिलंब तल पर बेतरतीबी से दोलन करते रहते हैं। यदि सदिशों के दिग्ग्रह (दिशाभिमुखन) में किसी तरह की तरतीबी प्रेक्षित होती है तो प्रकाश को ध्रुवित कहते हैं। उदाहरण के लिए, वृत्ताकार और एलिप्सी (दीर्घवृत्ताकार) ध्रुवण तब उत्पन्न होते हैं जब प्रकाश-तरंग में वैद्युत तथा चुंबकीय क्षेत्रों के सदिशों के अंत्य सिरे अपनी गति से वृत्त या एलिप्स की परिधि सुलेखित करते हैं। सरलतम स्थिति है—रैखिक ध्रुवण। रैखिकतः ध्रुवित प्रकाश में सदिश E तथा H की दोलन-दिशा कालांतर में स्थित रहती है। शीशे की सतह से परावर्तित होते समय सूर्य का प्रकाश अंशतः ध्रुवित हो जाता है। ऐसा प्रकाश क्रिस्टलिक पिंड से गुजरते वक्त क्रिस्टलिक जाली के अक्ष के साथ किरण के कोण के अनुसार कम या अधिक क्षीण होता रहता है। इसीलिए खिड़की के शीशे से परावर्तित प्रकाश आइसलैंड स्पार या टुर्मेलीन से गुजरते वक्त अपनी तीव्रता बदलता रहेगा—यदि क्रिस्टल को घुमाने के कारण उसके अक्ष और किरण के बीच का कोण बदलता रहेगा।

प्रयोगशाला में ध्रुवण का अध्ययन करने के लिए मान लीजिए हम टुर्मेलीन के दो पट्टे लेते हैं, जिनका तल क्रिस्टलिक जाली के अक्ष के साथ समांतर होता है। टुर्मेलीन का ऐसा पट्टा प्रकाश-तरंग के सिर्फ उस घटक को पार होने देता है, जिसका वैद्युत सदिश क्रिस्टल के अक्ष के साथ समांतर होता है। जब क्रिस्टल पर सूर्य का प्रकाश गिरता है तो उसके पार सिर्फ आधा प्रकाश ही गुजरता है, क्योंकि अक्ष के अभिलंब सदिश E वाले दोलन क्रिस्टल को पार नहीं कर सकेंगे।

क्रिस्टल से गुजरने वाले प्रकाश का अंश क्रिस्टल की स्थिति पर निर्भर नहीं करता। यह हम आसानी से समझ सकेंगे यदि याद करेंगे कि E की दिशाएं नैसर्गिक प्रकाश में बेतरतीब होती हैं। पर क्रिस्टल से गुजरे प्रकाश में सदिश सिर्फ एक दिशा में अभिमुख रहता है। अब दूसरे पट्टे पर गिरने के बाद वह या तो उससे पूरी तरह अवशोषित हो जा सकता है (यदि क्रिस्टल का अक्ष और दोलन की दिशा परस्पर

अभिलंब हैं) या बिना किसी हानि के उससे गुजर सकता है (यदि क्रिस्टल का अक्ष और दोलन की दिशा समांतर है)।

ऐसे भी क्रिस्टल हैं जो जुड़े हुए वैद्युत तीव्रता (वोल्टता) के प्रभाव से अपने पार गुजरने वाले प्रकाश का ध्रुवण-तल घुमा देते हैं। घूर्णन-कोण क्रिस्टल की मोटाई और लागू की गयी वोल्टता के साथ समानुपाती होता है। ध्रुवण-तल बहुत ही कम समय में घूम जाता है—सेकेंड के अरबवें अंश में ही !

ध्रुवण-तल के घूर्णन का इतना बड़ा वेग प्रकाश के लिए अतिक्षिप्र शटर (तेजी से खुलने और बंद होने वाला दरवाजा) बनाने में सहायक होता है (चित्र 27)। शटर के मुंह पर आने वाला प्रकाश क्रिस्टल I द्वारा ध्रुवित हो जाता है। क्रिस्टल II में धारा-तीव्रता शून्य होने पर इस क्रिस्टल से गुजरने वाले प्रकाश के ध्रुवण की दिशा नहीं बदलती है और क्रिस्टल III प्रकाश को पूरी तरह रोक लेता है। क्रिस्टल III प्रकाश को अपने पार तभी जाने देता है, जब उसका ध्रुवण क्रिस्टल I से पार आयी किरण के साथ लंब होता है। प्रकाश शटर को पार करे, इसके लिए जरूरी है कि क्रिस्टल II उसके ध्रुवण-तल को घुमा दे। यदि अब क्रिस्टल II को पर्याप्त वोल्टता प्रदान की जाये जिससे ध्रुवण-तल 90° के कोण पर घूम जाये, तो क्रिस्टल III किरण को नहीं रोकेगा और प्रकाश शटर पार कर लेगा।

एलेक्ट्रोनी-प्रकाशीय शटर सिर्फ क्षिप्र फोटोग्राफी के लिए ही जरूरी नहीं होते। लेसर-तकनीक में भी इनकी बहुत बड़ी भूमिका होती है। अनेक प्रकार के व्यावहारिक उपयोगों के लिए लेसर में बहुत बड़ी आवेगी शक्ति होनी चाहिए। इसका मतलब है कि लेसर के सक्रिय पिंड के परमाणुओं में संचित ऊर्जा को बहुत सूक्ष्म अंतराल में मुक्त होना चाहिए। यदि लेसर के सिरों पर लगे दर्पण कौंध-बल्ब जलने के समय खुले होंगे तो लेसर-किरणें अर्ध-पारदर्शक दर्पण पार करके जितने समय
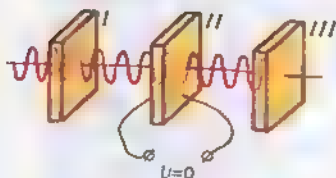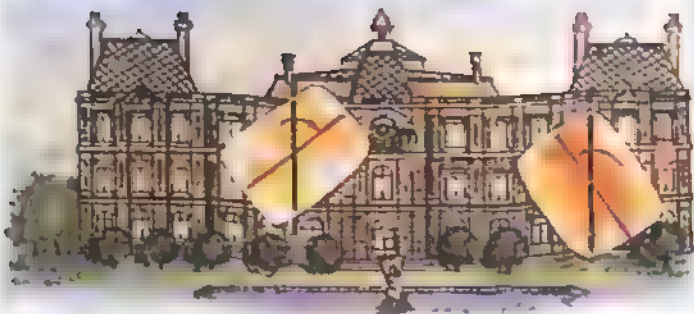
I II III

चित्र 27. प्रकाश का ध्रुवण। एलेक्ट्रोनो-प्रकाशीय द्रुत शटर का कार्य-सिद्धांत।
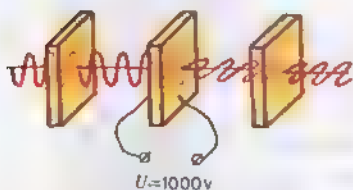
में बाहर निकलेंगी, वह कौंध के समय के साथ तुलनीय होगा। यह सेकेंड के हजारवें अंश के क्रम का है। यदि लेसर के सिरे और दर्पण के बीच शटर होगा, तो लेसर की कौंध का समय उतना ही होगा जितने समय के लिए शटर खुलेगा। शटर पंपिंग स्पंद के अंत में खोलना चाहिए। तब लेसर के विकिरणक पिंड मे संचित सारी ऊर्जा सेकेंड के

चित्र 28a. सौर प्रकाश के प्रभाव से पुच्छल तारे की पूंछ का विचलन ।

चित्र 28b. प्रकाश-दाब के अध्ययन के लिए लेबेदेव का प्रयोग ।
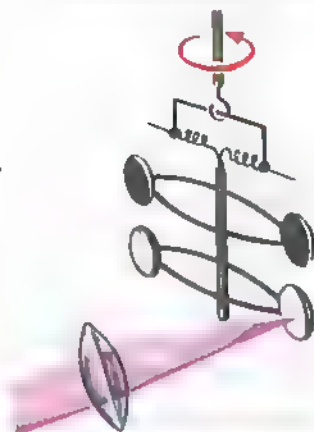
अरबवें अंश में ही विमुक्त हो जायेगी और लेसर-कौंध की शक्ति दस लाख गुनी अधिक होगी, बनिस्बत कि बिना शटर के ।

प्रकाश का दाब. हम जानते हैं कि प्रकाश द्रव द्वारा अवशोषित होता है और उसे अपनी ऊर्जा प्रदान कर देता है । पर ज्योति-प्रवाह पिंड पर यांत्रिक प्रभाव डालता है या नहीं ? प्रकाश-दाब की विद्य-मानता सम्बंधित कथन पुराने जमाने से ही सुनने में आते रहे हैं । 1604 में जर्मन ज्योतिर्विद केप्लेर ने धूमकेतु (पुच्छल तारे) की पूंछ के आकार का कारण प्रकाश-दाब का प्रभाव बताया (चित्र 28a) । लेकिन प्रकाश-दाब की विद्यमानता को सैद्धांतिक तौर पर सिद्ध किया इसके 250 वर्ष बाद अंग्रेज भौतिकविद मैक्सवेल ने । उन्होंने विद्यु-चुंबकीय क्षेत्र के सिद्धांत द्वारा प्रकाश-दाब का कलन भी कर लिया ।

मैक्सवेल के कलन से निष्कर्ष निकलता था कि यदि एक सेकेंड में

इकाई क्षेत्रफल पर प्रकाशीय ऊर्जा E गिरती है और पूर्णतया अवशोषित हो जाती है तो प्रकाश-दाव P बराबर $\frac{E}{c}$ होगा। यदि प्रकाश पूर्णतया परावर्तित हो जाता है तो उसका दाव दुगुना अधिक होगा : $\frac{2E}{c}$।

किसी परावर्तक सतह पर गिरने वाले प्रकाश को कणों—फोटोनों—का प्रवाह मानने पर हम फोटोनों को सामान्य गोलियों के रूप में देख सकते हैं जो सतह द्वारा प्रत्यास्थ रूप से परावर्तित हो जाते हैं या उससे अवशोषित हो जाते हैं। जब फोटोन आदर्श परावर्तक सतह पर लंबवत गिरता है, तो उसकी गतिमात्रा के सदिश की दिशा विपरीत हो जाती है। इस सदिश में पूर्ण परिवर्तन Δp का मान $2p$ होता है। यदि इकाई क्षेत्र पर हर सेकेंड एक फोटोन गिरता है तो मान Δp सतह पर प्रकाश-दाव के बराबर होगा। इस निष्कर्ष की तुलना मैक्सवेल के सूत्र के साथ करें। सूत्र के अनुसार $P=\frac{2E_\phi}{c}=2p$ है यदि इकाई क्षेत्र पर प्रति सेकेंड एक फोटोन गिरता है, जिसकी ऊर्जा E_ϕ है। पिछले सूत्र के मुताबिक $E_\phi=pc$ है, जहा p फोटोन की गतिमात्रा है। लेकिन कण की गतिमात्रा उसके द्रव्यमान और वेग का गुणनफल है और हमारी स्थिति मे कण (फोटोन) का वेग प्रकाश का वेग है। इससे निष्कर्ष निकलता है : $E=m_\phi c^2$। यदि इस निष्कर्ष का सभी द्रव्यमानों के लिए व्यापकीकरण किया जाये, तो आइन्सटाइन का सूत्र $E=mc^2$ प्राप्त होगा।

धूप भरी दोपहरी मे 1 m^2 क्षेत्र पर प्रकाश-किरणें 0.00039 N यांत्रिक बल उत्पन्न करती हैं। इतने छोटे बल को प्रयोगों द्वारा नापना बहुत कठिन है। इसलिए कई वैज्ञानिकों को मैक्सवेल द्वारा प्राप्त सैद्धा-तिक निष्कर्षों पर संदेह होने लगा। मैक्सवेल के सूत्र को प्रकाश-दाब की प्रत्यक्ष माप से सत्य सिद्ध करना जरूरी था।

प्रकाश-दाव की विद्यमानता को पहले-पहल 1899 में प्रायोगिक रूप से सिद्ध किया रूसी भौतिकविद लेबेदेव ने। उन्होंने पतले धागे से पखुडियों के दो जोड़े लटका दिये, जिनमें एक जोड़ा बिल्कुल काला था और दूसरा बिल्कुल दर्पण जैसा चमकदार था (चित्र 28b)।

यह सारी प्रयुक्ति निर्वात में रखी गयी। दर्पणी सतह वाली पंखुड़ी से प्रकाश व्यावहारतः पूर्ण रूप से परावर्तित हो जाता था इसलिए इस पर दाब दुगुना पड़ता था बनिस्बत कि काली पंखुड़ी के। दाब के कारण प्रयुक्ति घूम जाती थी और घूर्णन से वह बल निर्धारित किया जा सकता था, जो पंखुड़ियों पर क्रियाशील था। इससे प्रकाश-दाव भी नाप लिया जाता था।

प्रयोग पहली नजर मे बहुत सरल प्रतीत होता है, पर बात ऐसी नहीं है। "मैक्सवेल के प्रकाश-दाव की विद्यमानता को नकार कर मैं सारी जिंदगी उसे गलत सिद्ध करने की कोशिश में रहा, पर लेबेदेव के प्रयोगों ने मुझे हार मानने को विवश कर दिया"—यह अंग्रेज भौतिकविद थॉमसन ने कहा था।

क्या फोटोन अन्य पिंडों से आकर्षित होते हैं? ब्रह्मांड में पिंड एक-दूसरे को गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार आकर्षित करते हैं, जिसकी खोज कोई दो सौ वर्ष पूर्व न्यूटन ने की थी। प्रकाश जैसे असाधारण रूप वाले पदार्थ के साथ यह बात सच है या नहीं? क्या ज्योति-प्रवाह की कणिकाएं—फोटोन—पिंडों द्वारा आकर्षित होती है?

हमारी शती के आरंभ में अल्बर्ट आइन्सटाइन ने एक अत्यंत जटिल सिद्धांत को विकसित किया, जिसका नाम पड़ा—व्यापक सापेक्षिकता सिद्धांत। आइन्सटाइन के कलनों से निष्कर्ष निकलता था कि प्रकाश के क्वांटमों के आकर्षित होने की संवृत्ति अत्यंत शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों में ही देखी जा सकती है, जैसे सूर्य की सतह से अल्प दूरियों पर, जहां गुरुत्वाकर्षण विशेष रूप से अधिक होता है।

चित्र 29a. सूर्य की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति तारा *A* के प्रकाश की किरण को विचलित करती है।
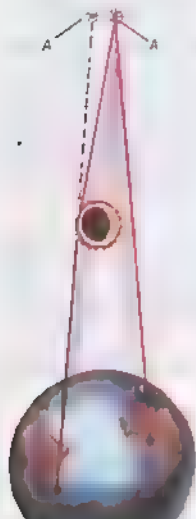
चित्र 29b. पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र के कारण क्वांटम की ऊर्जा में वृद्धि।

1919 के आरंभ में दो अभियान संगठित किये गये। एक ने ब्राजील के सोब्राल नगर के निकट कैंप लगाया और दूसरे ने पश्चिमी अफ्रीका के तटवर्ती द्वीप प्रिंसीपी पर। इन स्थानों पर मई 1919 में पूर्ण सूर्य-ग्रहण होने वाला था।

सौर किरीट के सामान्य अन्वीक्षण के साथ-साथ आइन्सटाइन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत के निष्कर्षों को भी जांचने का निश्चय किया गया।

इसके लिए आकाश के एक ही क्षेत्र में दूरबीन से दिखने वाले तारों की स्थिति निर्धारित करनी थी, और वह भी दो परिस्थितियों में—जब तारों की किरणों का पृथ्वी तक मार्ग सूर्य से बहुत दूर होता है और जब किरणें सूर्य के निकट से चलती हुई पृथ्वी पर आती हैं। तारों की स्थितियों में परिवर्तन के आधार पर सूर्य के गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र द्वारा किरणों के विचलन के बारे में निष्कर्ष दिया जा सकता है। उस समय सूर्य की चकती के निकट तारों को सिर्फ पूर्ण सूर्य-ग्रहण के समय देखा जा सकता था क्योंकि सूरज के उगने पर वातावरण द्वारा प्रकीर्णित चमकदार प्रकाश की पृष्ठभूमि में तारे नही दिखते।

29 मई 1919 को वैज्ञानिकों ने स्पष्ट रूप से जान लिया कि प्रकाश की किरण सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से वैसे ही विचलित होती है, जैसे व्यापक सापेक्षिकता सिद्धांत उसके विचलित होने की भविष्य-वाणी कर रहा था (चित्र 29a)। इसके बारे में जानने के बाद आइन्स-टाइन ने प्लाक को लिखा : "इस दिन तक मुझे जिंदा रखकर भाग्य ने मुझ पर विशेष कृपा की है..."।

हमारे समय मे विद्युचुंबकीय विकिरण के क्वांटमों पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पार्थिव परिस्थितियों में भी संभव है। आइन्सटाइन की भविष्यवाणी के अनुसार विद्युचुंबकीय विकिरण का क्वाटम गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में द्रव्यमान $\frac{E}{c^2}$ वाले कण की भांति आचरण करता है (E क्वां-टम की ऊर्जा है)। ऊंचाई H से गिरते वक्त क्वाटम को अतिरिक्त गतिज ऊर्जा $\Delta E = mgH$ प्राप्त करनी चाहिए जहां g गुरुत्व-बल का त्वरण है। क्वांटम में जितनी ही अधिक ऊर्जा होगी, उसकी आवृत्ति ν भी उतनी ही अधिक होगी। समझना कठिन नहीं है कि ऊंचाई H से गिरे क्वाटम की आवृत्ति मे $\Delta\nu = \frac{\Delta E}{hc^2} gH$ की वृद्धि होगी। गुरुत्वा-कर्षण-बल के विरुद्ध गति होने पर ऊर्जा आवृत्ति में कमी आती है।

पार्थिव गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में गुरुत्व-बल के कारण क्वांटम की ऊर्जा में वृद्धि का अंश है $\frac{\Delta E}{E} = \frac{gH}{c^2} = \frac{9.81 \times 1}{9 \times 10^{16}} = 10^{-16}$। आपको लग सकता है कि ऊर्जा मे नगण्य परिवर्तन का अवलोकन वैज्ञानिकों के पास मौजूद सूक्ष्मतम विधियों से भी संभव नही है। पर जर्मन वैज्ञानिक मेसबावेर को कुछ परमाणु-नाभिकों द्वारा उत्सर्जित क्वांटमों की ऊर्जा में सूक्ष्मतम परिवर्तनों का भी पता लगाने की विधि मिल गयी; इसमें सहायक हुआ गामा-क्वांटमों के अनुनादी अवशोषण का प्रभाव जिसकी खोज उन्होंने 1958 में की थी। साल भर बाद मेसबावेर की विधि से अमरीकी भौतिकविद पाउंड और रेब्का ने हार्वार्ड विश्वविद्यालय की ऊंची मीनार से "गिरते" क्वांटम की गतिज ऊर्जा में वृद्धि का प्रेक्षण किया (चित्र 29b)। उन्होंने ऊर्जा मे सापेक्षिक वृद्धि नापी, जो 2.5×10^{15} के बराबर थी। ज्योतिर्विदों द्वारा पूर्ण ग्रहण के समय प्रेक्षित सौर प्रभाव की तुलना मे पार्थिव गुरुत्वाकर्षण का यह अवलोकित प्रभाव कोई एक अरब गुना कम था। प्राप्त मान आइन्सटाइन के सिद्धांत का पूर्ण समर्थन करते थे।

क्वांटम यांत्रिकी का जन्म

तप्त पिंड तारे के रंग और उसके विकिरण के स्पेक्ट्रम की संरचना के आधार पर भौतिकविद तारे का विकिरण-प्रवाह ज्ञात करना सीख चुके थे। इस काम में तारे को तप्त ठोस पिंड माना जाता था। कलन भी उन्हीं सूत्रों पर सम्पन्न होते थे, जो पार्थिव परिस्थितियों में तप्त पिंडों के विकिरण की मापों पर आधारित थे। पर जब वैज्ञानिकगण तप्त ठोस पिंड के विकिरण के नियमों की सैद्धांतिक व्याख्या ढूंढने लगे, तो उन्हें ढेर सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तप्त ठोस पिंड सबसे अधिक मिलने वाला प्रकाश-स्रोत है। विजली के बल्ब में तप्त तार ही रोशनी देता है, हीटर में तप्त तार से प्रकाशीय और तापीय विकिरण होता है, मानव-शरीर तापीय विकिरण देता है। ऊर्जा का हमारा मुख्य स्रोत सूर्य भी उन्हीं नियमों से विकिरण करता है, जो तप्त ठोस पिंडों के विकिरण-नियमों के बहुत करीब हैं। इसलिए इन नियमों की सैद्धांतिक व्याख्या के प्रश्न को बेशक नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

हमारी शती के आरंभ में अंग्रेज वैज्ञानिक जींस ने एक नियत तापक्रम तक तप्त भीतरी दीवारों वाले संवृत (बंद) बर्तन के भीतर होने वाले विकिरण की संरचना का हिसाब लगाया। जींस ने अपने कलन मैक्सवेल के विद्युत्चुंबकीय क्षेत्र के सिद्धांत पर आधारित किये; साथ-साथ उन्होंने यह भी माना कि तप्त भीतरी भाग अविराम रूप से तरंगें उत्सर्जित करता रहता है। परिणामस्वरूप जींस इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसे भीतरी भाग में विकिरण की आवृत्ति सिर्फ दीवार के तापक्रम में

चित्र 30. परम काले पिंड का प्रतिमान। परम काला पिंड खोखले गोले (या बेलन) को कहते हैं, जिसकी भीतरी दीवारें काली पुती होती हैं और उनमें छेद d होता है। छेद में प्रविष्ट किरण 1 वापस बाहर नहीं निकलती। काली दीवारों से कई बार परावर्तित होने के बाद किरण अवशोषित हो जाती है। इसीलिए छेद d से सिर्फ ऐसा विकिरण निकलता है, जिसकी विशेषताएं खोखले गोले (या बेलन) की दीवारों के तापक्रम पर ही निर्भर करती हैं। रोचक बात यह है कि सूर्य भी लगभग उन्हीं नियमों के अनुसार प्रकाश उत्सर्जित करता है, जिनके अनुसार परम काला पिंड।
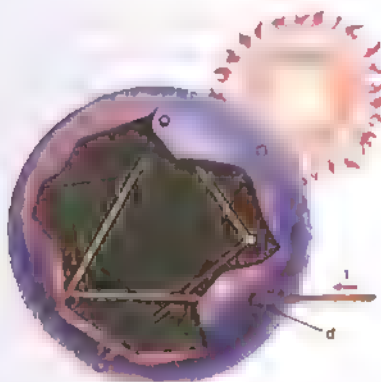
निर्धारित होती है, वह इस बात पर निर्भर नहीं करती कि दीवारें किस द्रव्य से बनी हैं। यदि उसमें एक छोटा-सा छेद बना दिया जाये, तो उसमें से निकलने वाला विकिरण संवृत तप्त बरतन के भीतर के विकिरण से व्यवहारतः भिन्न नहीं होगा। कहते हैं कि ऐसा छेद परम काले पिंड की तरह विकिरण करता है (चित्र 30)।

"परम काले पिंड" की अवधारणा सैद्धांतिक भौतिकी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब भौतिकविद किसी चीज को परम काला कहता है, तो इसे बिल्कुल शाब्दिक अर्थ में नहीं लेना चाहिए। बात सिर्फ इतनी है कि वह चीज अपने ऊपर गिरने वाली सभी किरणों को पूरी तरह अवशोषित कर लेती है, चाहे उनकी तरंग-लंबाई कुछ भी क्यों न हो। संवृत भीतरी भाग में छेद उस पर गिरने वाले प्रकाश को लगभग पूरी तरह अवशोषित कर लेता है, पर इसका यह मतलब नहीं है कि वह किसी भी प्रकार की किरण उत्सर्जित नहीं करता, और वह काले रंग का होगा। होता ठीक उलटा है : "परम काले पिंड" के छेद के इकाई क्षेत्र का विकिरण-प्रवाह उसी तापक्रम तक तप्त किसी भी अन्य पिंड के इकाई क्षेत्र के विकिरण-प्रवाह से अधिक होता है। इसके अलावा, यह प्रवाह तापक्रम के साथ-साथ बहुत तेजी से बढ़ता है, तापक्रम के चौथे घात के साथ समानुपाती होता है। विकिरण और तापक्रम का ऐसा सम्बंध स्टेफान-बोल्ट्समान का नियम कहलाता है। परम काले पिंड के लिए यह नियम निम्न प्रकार से लिखा जाता है : $\varphi = \sigma H T^4$। यहां φ विकिरण-प्रवाह (वाट, W में) है, H सतह का क्षेत्रफल (m^2) और T परम तापक्रम (K) है; σ स्टेफान-बोल्ट्समान का स्थिरांक है, जिसका मान 5.67×10^{-8} $W \cdot m^{-2} \cdot K^{-4}$ है। अब इस सूत्र से सूर्य की 1 m^2 सतह द्वारा उत्सर्जित विद्युत्चुंबकीय विकिरण-प्रवाह का मूल्यांकन करते हैं। यदि यह मान लें कि सूर्य लगभग परम काले पिंड के नियम के अनुसार विकिरण करता है और उसकी सतह का तापक्रम 5800 K है, तो काफी बडी शक्ति मिलेगी : 75 MW/m^2।

चित्र 31. जीँस के सिद्धांत के अनुसार प्रकाश-दोलनों की आवृत्ति ν में वृद्धि के साथ-साथ परम काले पिंड की विकिरण-क्षमता ε_ν को भी निरन्तर बढ़ने रहना चाहिए। यदि ऐसा होता, तो कोई भी तप्त पिंड परास CD में एक्स-किरणें ही उत्सर्जित करता। प्लांक के सिद्धान्त के अनुसार विकिरण-क्षमता एक नियत आवृत्ति तक ही बढ़ती है, इसके बाद घटने लगती है। इस प्रकार की विकिरण-क्षमता का एक महत्तम मान होता है। प्रयोगों ने प्लांक की बात को सत्य सिद्ध किया है। यदि परम कृष्ण पिंड के विकिरण-पथ पर प्रिज्म रखा जाये, तो दोलनों की अल्प आवृत्तियों वाली प्रकाश-तरंगें प्रिज्म द्वारा कम विचलित होंगी बनिस्बत कि उच्च आवृत्तियों वाली। तल के समान्तर सरकाये जा सकने वाले विकिरण-ग्राहक द्वारा भिन्न दोलन-आवृत्तियों की तरंगों की मानुरूप किरणों की ऊर्जा नाप कर प्लांक के सूत्र द्वारा व्यक्त निर्भरता प्राप्त की जा सकती है।
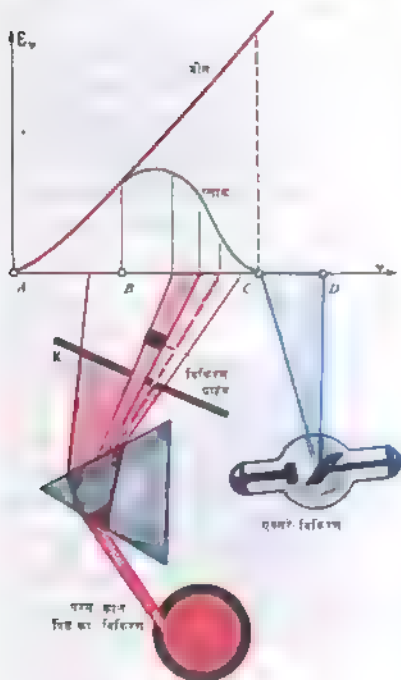
काले पिंड के विकिरण का रहस्य. तप्त पिंडों का विकिरण सिर्फ विशाल शक्ति से ही नहीं लंछित होता। तापक्रम बढ़ने पर पिंड का रंग

भी बदलता है : चूल्हे में गाढ़े लाल से सूर्य के चकाचौंध करने वाले श्वेत रंग तक—ऊर्जा का अंश उच्च आवृत्तियों के क्षेत्र में अधिक और अधिक होता जाता है। विकिरण की स्पेक्ट्रमी रचना बदलती जाती है। विकिरण-ऊर्जा की आवृत्ति ν पर निर्भरता भौतिकविद आवृत्तियों के संकीर्ण अंतरालों (जैसे ν_1 से ν_2) में प्राप्त ऊर्जा नाप कर निर्धारित करते हैं।

यदि स्पेक्ट्रम के ν_1 से ν_2 के क्षेत्र में पिंड द्वारा विकिरणित ऊर्जा में अंतराल $\Delta\nu = \nu_2 - \nu_1$ से भाग दिया जाये तो राशि ε_ν मिलेगी, जो ν_1 तथा ν_2 के बीच स्थित आवृत्ति ν के लिए परम काले पिंड की विकिरण-क्षमता है। अब यदि क्रमित अक्ष पर ε_ν के प्रयोगाधीन बदलते मान लिये जायें और क्रमक अक्ष पर तदनुरूप आवृत्तियां अंकित की जायें तो एक उच्चिष्ठ वाला वक्र प्राप्त होगा। लेकिन रेले-जीस द्वारा निर्धारित सैद्धांतिक सूत्र देखें : $\varepsilon_\nu = \frac{2\pi\nu^2 KT}{c^2}$, यह एक परवलय है, जिसमें कोई उच्चिष्ठ नहीं होता (चित्र 31)। इसका मतलब है कि रेले और जीस द्वारा स्वतंत्र रूप से प्राप्त नियम प्रायोगिक आंकड़ों के साथ दिशांक-मूल के क्षेत्र में परास *AB* के अंतर्गत सिर्फ अल्प आवृत्तियों के लिए ही संपात करता है। अन्य स्थितियों में सूत्र अर्थहीन है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पिंड के किसी भी तापक्रम पर अधिकांश विकिरण लघु तरंगों के हिस्से में आता है।

सबसे लघुतरंगी विकिरण, जिसे हमारी आंख अनुभव कर सकती है, बैंगनी है। इसीलिए रेले और जीस के कलनों से निष्कर्ष निकलता था कि किसी भी तप्त पिंड के विकिरण में सबसे अधिक बैंगनी किरणें होनी चाहिए। सैद्धांतिक निष्कर्ष था कि गर्म चूल्हा बैंगनी रंग का प्रकाश देता है! पर रेले और जीस के कलनों में कोई गलती नहीं थी, वे क्लासिकल भौतिकी के जांचे-परखे नियमों पर आधारित थे।

फिर तप्त पिंडों के विकिरण का रहस्य क्या है? यह एक बहुत जटिल समस्या थी जिसका समाधान तुरंत नहीं मिला था।

पहले-पहल जर्मन सिद्धांत-वेत्ता माक्स प्लांक ने पिंड के विकिरण की विशेषतासूचक राशियों की उसके तापक्रम पर निर्भरता प्राप्त की। काम आसान नहीं था। कलन के परिणाम प्रायोगिक आंकड़ों से संपात करें, ऐसे सूत्र के चयन में उन्हें दो वर्ष लगे थे। यह रहा उनके नाम से विख्यात सूत्र : $\varepsilon_\nu = \frac{2\pi h\nu^3}{c^2\left(e^{\frac{h\nu}{kT}}-1\right)}$ । यहां h प्लांक-स्थिरांक है, जिस का मान 6.62×10^{-34} J.s है, c—प्रकाश-वेग है, $k=1.38\times10^{-23}$ J.K बोल्ट्समान का स्थिरांक है। बोल्ट्समान-स्थिरांक k में तापक्रम T से गुणा करने पर परमाणुओं के दोलन की औसत ऊर्जा मिलती है।

शब्द "क्वांटम" की उत्पत्ति. भौतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए सिर्फ ऐसा सूत्र प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है, जो प्रक्रिया की लंच्छक राशियों के संबंध को सही-सही व्यक्त करता हो। अधिक महत्वपूर्ण है उन पूर्वमान्यताओं को स्थापित करना, जिन पर प्राप्त नियम आधारित होता है। लंबे अन्वीक्षणों के बाद प्लांक समझ गये कि प्रकाश को सतत तरंग-प्रक्रिया मानकर उनके द्वारा खोजा गया सूत्र निगमित नहीं किया जा सकता। सूत्र यह मान कर प्राप्त किया जा सकता था कि प्रकाश अंशों, क्वांटमों, में उत्सर्जित होता है और क्वांटम की ऊर्जा $h\nu$ के बराबर होती है। यह परिकल्पना, प्रकाश की तरंग-प्रकृति के बारे में उस समय विद्यमान सभी मान्यताओं के विपरीत थी !

पर दूसरा रास्ता नहीं निकल रहा था और सन् 1900 ई. में प्लांक ने अपने निष्कर्ष प्रकाशित करवा दिये। वे खुद भी प्रकाशीय ऊर्जा के क्वांटमों के अस्तित्व पर पूरी तरह विश्वास नहीं कर पा रहे थे। उस समय प्लांक क्वांटम को एक सहायक अवधारणा मानते थे, जिसकी सहायता से विकिरण-आवृत्ति और तप्त ठोस पिंड के तापक्रम पर ε_ν की निर्भरता का सही रूप मिल सकता था।

बाद में "क्वांटम संबंधी" प्लांक की प्रथम रचना को याद करते हुए आइन्सटाइन कहा करते थे : "...प्लांक ने भौतिकविदों के कान में पिस्सू बैठा दिया था"। यह "पिस्सू" विद्युचुंबकीय विकिरण की क्वांटमी प्रकृति का ही विचार था, जिसने अन्ततः आधुनिक क्वांटमी सिद्धांत की नींव रखी।

प्लांक मानते थे कि प्रकाश छिन्न रूप में अर्थात थोड़ा-थोड़ा करके क्वांटमों में सिर्फ विकिरणित ही होता है, लेकिन गमन करता है तरंग की तरह। अब यह स्पष्ट करना आवश्यक था : अवशोषण की प्रकृति सतत होती है या क्वांटमी ?

क्वांटम और एलेक्ट्रोन. 1887 में ही भौतिकविदों ने एक संवृत्ति ज्ञात की थी जिसका नाम आगे चलकर **फोटो-प्रभाव** रखा गया है। संवृत्ति यह थी कि अच्छी तरह से निर्वात किये गये बरतन में रखे धातु के पट्टे को प्रकाशित करने पर उसमें से ऋणाविष्ट कण—एलेक्ट्रोन—निकलने लगते थे (चित्र 32)। बाद में पट्टे से निकलने वाले एलेक्ट्रोनों का वेग भी नापा गया। पता चला कि आपतित प्रकाश की तरंग-लंबाई घटने पर एलेक्ट्रोनों का वेग बढ़ जाता है। यथा, लाल प्रकाश में पट्टे से निकलने वाले एलेक्ट्रोनों का महत्तम वेग लगभग दुगुना कम था, बनिस्बत कि बैंगनी प्रकाश में। आश्चर्य की बात यह थी कि पट्टे पर गिरने वाले प्रकाश की मात्रा पर एलेक्ट्रोनों का वेग निर्भर नहीं करता था। यदि पट्टे पर सतत तरंगें गिरती रहतीं, तो जैसे-जैसे उसका आयाम बढ़ता, अर्थात जैसे-जैसे इकाई सतह द्वारा अवशोषित प्रकाश की मात्रा बढ़ती, वैसे-वैसे पट्टे से निकलने वाले एलेक्ट्रोनों का वेग भी बढ़ता।

फोटो-प्रभाव का रहस्य यह मानने पर समझ में आ जाता था कि ज्योति-प्रवाह अलग-अलग कणों-क्वांटमों से बना हुआ है और क्वांटम की ऊर्जा $h\nu$ द्वारा व्यक्त होती है।

चित्र 32. फोटो-प्रभाव संबंधी प्रयोग का आरेख।
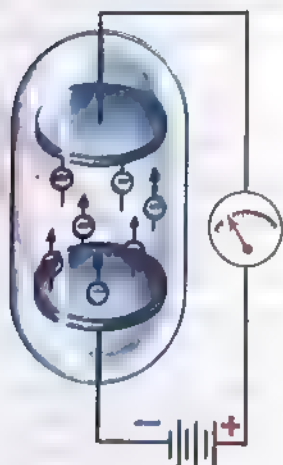
चित्र 33. फोटो सेल।
(1. ऊपद, 2. नीचद)।

पट्टे के द्रव्य से टकराने पर क्वांटम की ऊर्जा पहले तो कार्य A में खर्च होती है, जिससे एलेक्ट्रोन नुचकर धातु से बाहर निकलता है, और दूसरे—एलेक्ट्रोन का वेग, उसकी गतिज ऊर्जा बढ़ाने में खर्च होती है। ऊर्जा-संरक्षण के नियम के आधार पर यह बात गणितीय रूप में लिखी जा सकती है : $h\nu=A+\frac{mv^2}{2}$। इस सूत्र में m एलेक्ट्रोन का द्रव्यमान है और v इसका वेग है। A स्थिर राशि है, इसीलिए एलेक्ट्रोन का वेग आवृत्ति के साथ-साथ बढ़ता है। प्रयोग द्वारा सूत्र की जांच ने दिखाया कि वह फोटो-प्रभाव की नियम-संवृत्तियों को पूरी तरह समझा देता है। पहले-पहल इसे 1905 में आइन्सटाइन ने लिखा

था। क्वांटमी अवधारणाओं से एक नयी संवृत्ति की सफल व्याख्या प्रकाश की छिन्न रचना ही का एक और नया प्रमाण है।

अनेक अर्धचालक द्रव्य प्रकाश मे अपना विद्युत प्रतिरोध कम कर देते हैं क्योंकि अर्धचालक की क्रिस्टलिक जाली में फोटोनों के प्रभाव से "स्वतंत्र" वैद्युत आवेश उत्पन्न हो जाते हैं। प्रकाश के इस प्रभाव को **आंतरिक फोटो-प्रभाव** कहते हैं।

मास्को के भूमिगत रेलवे में द्वार पर पांच कोपेक का सिक्का डाले बिना उसमें प्रवेश नही किया जा सकता, प्रकाश-किरणें रोक लेंगी। किरणें एक तरफ से निकलकर दरवाजे के पार लगे फोटो-एलीमेंट पर गिरती हैं। जब आदमी बिना सिक्का डाले प्रवेश करने लगता है, अपने शरीर से किरणों को रोक लेता है, फोटो-एलीमेंट संकेत को और शक्तिशाली बनाकर द्वार बंद करने वाली मशीन को प्रेषित कर देता है।

बाह्य फोटो-प्रभाव वाले फोटो-एलीमेंट की रचना इस प्रकार होती है। कांच के फ्लास्क की दीवार पर धातु का पतला अस्तर और ऊपर अर्धचालक द्रव्य फैला होता है—यह नीचद (कैथोड) है। नीचद से बैटरी का ऋण ध्रुव जुडा होता है और ऊंचद (ऐनोड, फ्लास्क में निकेल की छड़) से धन ध्रुव जुडा होता है। जब प्रकाश एलेक्ट्रोनों को धकेल कर नीचद से निष्कासित करता है, फोटो-एलीमेंट के परिपथ मे धारा बहती है। प्रकाश नहीं रहता है, तो धारा भी नहीं बहती है। फोटो-एलीमेंट की क्रिया को तीव्र किया जा सकता है और यह किसी भी यांत्रिक तंत्र के संचालन में प्रयुक्त हो सकता है।

बाह्य फोटो-प्रभाव वाले फोटो-एलीमेंट के ऐसे आरेख में आंतर फोटो-प्रभाव वाले फोटो-एलीमेंट समाविष्ट किये जा सकते है। इन्हें फोटो-प्रतिरोध कहते हैं। ये वैद्युत परिपथ में लगकर उसका प्रतिरोध कम या बेशी करते हैं। फोटो-प्रतिरोध का सबसे मूल्यवान गुण है—

हल्के गर्म पिंडों के विकिरण पर भी प्रतिक्रिया करना; यह विकिरण अव-रक्त किरणों जैसी दीर्घ तरंग-लंबाइयों वाली किरणी ऊर्जा होती है।

वैज्ञानिकगण ऐसे फोटो-प्रतिरोध बना चुके है, जो 10 µm से भी अधिक तरंग-लंबाई वाली किरणों के प्रति संवेदी होते हैं। वीन का स्थानांतरण-नियम याद करें; $\lambda T = 2897$ µm होता है। यदि $\lambda = 9.35$ µm, तो $T = \frac{2897}{9.35} = 309°K$, अर्थात लगभग 36°C होगा। ऐसी किरणें हमारा शरीर भी उत्सर्जित करता है। यदि हमारी आंखें इन किरणों पर प्रतिक्रिया करती, तो रात को हमें आदमी का चेहरा चमकता हुआ नजर आता।

परमाणु और क्वांटम. क्वांटमों का सिद्धांत विकसित करने में अगला कदम डेनमार्क के भौतिकविद नील्स बोर ने उठाया। उन्होंने अलग-अलग परमाणु का विकिरण स्पष्ट करने का निर्णय किया। ठोस पिंड में परमाणु बहुत अधिक शक्ति से व्यतिक्रिया करते हैं और इसी-लिए उनका विकिरण सतत स्पेक्ट्रम बनाता है, यह विकिरण इस बात पर भी नहीं निर्भर करता कि ठोस पिंड किस प्रकार के परमाणुओं से बना हुआ है : तांबे या लोहे के तप्त टुकड़ों का तापक्रम समान होने पर उनके विकिरण का स्पेक्ट्रम एक जैसा मिलेगा। भीड़ के शोर-गुल में अलग-अलग व्यक्तियों की आवाज में फर्क करना संभव नहीं होता। इसी प्रकार ठोस पिंड में भी परमाणु अपनी विशेषताएं खो बैठते हैं। विरलकृत गैस के परमाणु एक-दूसरे से काफी दूर होते हैं और प्रकाश उत्सर्जित करते समय एक-दूसरे से टकराते नहीं हैं। इसलिए जब गैस विकिरण करती है, तो अलग-अलग परमाणुओं का "स्वर सुनने को मिलता है"।

परमाणु और ग्रह. यदि विद्युत-निरावेशन के अधीन चमक रहे

हाइड्रोजन से भरे फ्लास्क को स्पेक्ट्रमदर्शी की झिरी के सामने रखा जाये, तो हो सकता है कि निम्न तरंग-लंबाइयों का विकिरण मिले : 0.656 μm, 0.486 μm, 0.434 μm और 0.410 μm। इन्हें क्रमश: H_α, H_β, H_γ, H_σ ...आदि से द्योतित किया जाता है। स्विटजरलैंड के अध्यापक बालमेर ने हाइड्रोजन द्वारा उत्सर्जित तरंगों की लंबाइयों में क्या संबंध है, यह ज्ञात करने का निश्चय किया। उन्होंने एक सूत्र का चयन कर लिया जिसके सहारे तरंग-लंबाइयां H_α, H_β ... आदि कलित की जा सकती थीं। यह 1885 में हुआ था, और इसके पांच वर्ष बाद रीडबेर्ग ने बालमेर के सूत्र को आधुनिक रूप प्रदान किया : $\frac{1}{\lambda}=R\left(\frac{1}{2^2}-\frac{1}{n^2}\right)$। राशि $R=10\ 967\ 758.1\ m^{-1}$ एक स्थिरांक है, जिसे बाद में **रीडबेर्ग का स्थिरांक** नाम दिया गया। हाइड्रोजन के स्पेक्ट्रम की किसी रेखा की तरंग-लंबाई बालमेर-सूत्र में n की जगह पूर्ण संख्याएं 3, 4, 5 या 6 रखने पर मिलती है। हाइ-ड्रोजनी विकिरण की रेखाओं के बीच ऐसी पारस्परिक निर्भरता क्यों है, यह उस समय न तो बालमेर समझ सके थे, न रीडबेर्ग, और न ही कोई दूसरा भौतिकविद। बालमेर का विश्वास था कि प्रकृति में व्यवस्था सर्वत्र व्याप्त है और उन्होंने सिर्फ काम लायक सूत्र चुना है, या जैसे हम कहते हैं, उन्होंने अनुभवपरक सूत्र प्राप्त किया है। सूत्र बिल्कुल सही निकला। तरंग-लंबाइयों के कलित तथा मापित मानों में अंतर का कारण माप की त्रुटियां मानी जाती थीं। बालमेर की खोज की व्याख्या 28 वर्ष बाद संभव हुई। इसके लिए पहले परमाणु की संरचना को समझना जरूरी था। यह समझ महान अंग्रेज भौतिकविद रदरफोर्ड के कार्यों से आनी शुरू हुई। 1911 में उन्होंने प्रयोग द्वारा दिखाया कि परमाणु में एक भारी धनाविष्ट नाभिक होता है, जिसका आकार परमाणु की तुलना में बहुत ही छोटा होता है। रदरफोर्ड ने परमाणु को एक तंत्र के रूप में माना, जो सौर तंत्र से मिलता-जुलता था : नाभिक

के गिर्द एलेक्ट्रोन ऐसे घूमते रहते हैं जैसे सूर्य के गिर्द उसके ग्रह (चित्र 34)। परमाणु का ऐसा प्रतिमान सौर मंडलीय कहलाता है। एक रोचक बात है कि परमाणु-नाभिक और एलेक्ट्रोन के बीच क्रियाशील आकर्षण-बल उनकी आपसी दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। परमाणु मे दूरी पर आकर्षण-बल की निर्भरता वैसी ही है, जैसी ग्रहो की गति संचालित करने वाले न्यूटनी गुरुत्वाकर्षण-नियम में।

परमाणु की सौर मंडल जैसी रचना रदरफोर्ड के प्रयोगों के साथ मेल खा रही थी, पर मैक्सवेल के सिद्धांत का विरोध कर रही थी। मैक्सवेल द्वारा प्राप्त सूत्र से निष्कर्ष निकलता था कि सौर मंडल जैसी रचना वाला परमाणु टिकाऊ नही हो सकता। नाभिक के गिर्द परिक्रमाशील एलेक्ट्रोनो को धीरे-धीरे अपनी ऊर्जा खोनी चाहिए थी और अंततः नाभिक पर "गिर" जाना चाहिए था। पर परमाणु तो टिकाऊ है ! मतलब कि सौरमंडलीय प्रतिमान परमाणु की रचना को प्रतिबिंबित नही करता...लेकिन महान भौतिकविद नील्स बोर कुछ और तरह से सोच रहे थे।

बोर का क्वांटमी सिद्धांत. 1913 मे नील्स बोर ने सौरमंडल-रचना वाले परमाणु के टिकाऊपन की समस्या हल करने के लिए कुंजी ढूंढ़ ली। बोर का सिद्धात तत्वो के प्रकाशीय स्पेक्ट्रम के प्रायोगिक अन्वीक्षण पर और, सबसे पहले, बालमेर के निष्कर्ष पर आधारित था।

हाइड्रोजन का परमाणु सरलतम है। उसका नाभिक धनाविष्ट प्राथमिक कण प्रोटोन है जिसके गिर्द ऋणाविष्ट एलेक्ट्रोन चक्कर लगाता है। एलेक्ट्रोन का कक्ष परमाणु के नाभिक से जितना ही निकट होगा, परमाणु की ऊर्जा उतनी ही कम होगी, क्योंकि विपरीत आवेशों की आपसी दूरी घटने पर उनकी कुल ऊर्जा कम होती है।

बोर ने माना कि परमाणु में एलेक्ट्रोन सिर्फ नियत कक्षों पर ही घूम सकते हैं, जिन्हें उन्होंने अनुमत कक्षों की संज्ञा दी। एक कक्ष से
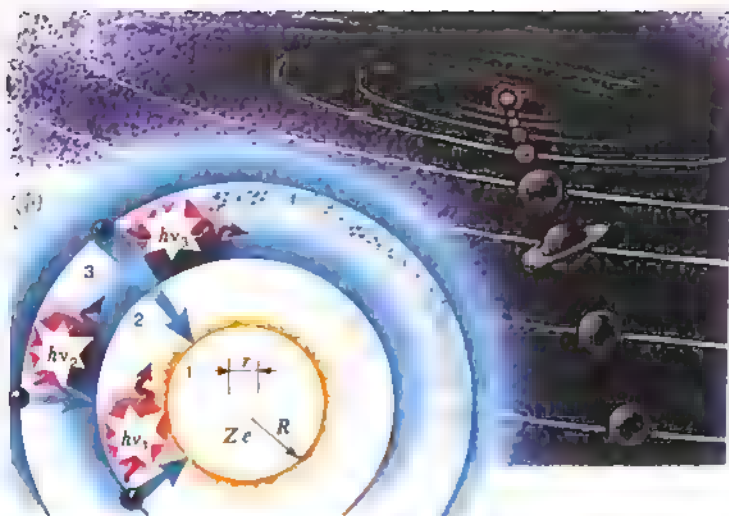
चित्र 34 सौर-मंडल और परमाणु का सही प्रतिरूप। हाइड्रोजन के परमाणु में एलेक्ट्रोन यदि दूरस्थ कक्ष से निकटस्थ पर संक्रमण करता है ($2 \rightarrow 1$), तो परमाणु प्रकाश का क्वांटम उत्सर्जित करता है। विपरीत संक्रमण में परमाणु क्वांटम को अवशोषित करता है। एक कक्ष से दूसरे पर संक्रमण ऊर्जा-स्तरों के आरेख द्वारा निरूपित करते हैं। हरेक ऊर्जा-स्तर E_1, E_2, E_3 आदि कक्ष 1, 2, 3 आदि पर स्थित एलेक्ट्रोन की ऊर्जा के अनुरूप होता है। स्तरों की ऊर्जाओं का अंतर परमाणु द्वारा उत्सर्जित या अवशोषित क्वांटम की ऊर्जा के बराबर होता है।

दूसरे कक्ष पर एलेक्ट्रोन छलांग लगाकर ही आता है। यदि एलेक्ट्रोन किसी अनुमत कक्ष से नाभिक के और भी निकट स्थित कक्ष पर संक्रमण करता है, तो परमाणु ऊर्जा उत्सर्जित करता है—विद्युचुंबकीय विकिरण के क्वांटम के रूप में (चित्र 34)। यदि एलेक्ट्रोन दूरस्थ कक्ष पर संक्रमण करता है, तो इसके लिए जरूरी है कि परमाणु क्वांटम की ऊर्जा अवशोषित करे, जो दूर वाले कक्ष पर एलेक्ट्रोन के स्थित होने पर परमाणु की ऊर्जा और अवशोषण-पूर्व परमाणु की ऊर्जा के अंतर के बराबर हो। दूसरे शब्दों में, एलेक्ट्रोन का हर कक्ष परमाणु की नियत ऊर्जा के अनुरूप होता है।

इस ऊर्जा को E_n से द्योतित करते हैं (सूचक वर्ण n कक्ष की क्रम-संख्या है, अतः उसका मान 1, 2, 3, ... हो सकता है)। राशि E (E_1, E_2, आदि) को परमाणु की ऊर्जा का स्तर कहते हैं। बोर ने अनुमान किया कि एलेक्ट्रोन की गतिमात्रा का आघूर्ण किसी पूर्ण संख्या n से राशि $\frac{h}{2\pi}$ का गुणनफल है, अर्थात $mvr = n\frac{h}{2\pi}$। इस शर्त और कक्ष पर एलेक्ट्रोन के संतुलन की शर्त $\frac{mv^2}{r} = \frac{Ze^2}{r^2}$ से रीडबेर्ग का सूत्र प्राप्त हो जाता है। कक्ष पर एलेक्ट्रोन के संतुलन की शर्त वही है जो पृथ्वी के उपग्रह और अन्य ग्रहों के लिए है। वाम पक्ष $\frac{mv^2}{r}$ कक्ष पर गतिमान एलेक्ट्रोन पर क्रियाशील केंद्रमुखी बल है (m—एलेक्ट्रोन का द्रव्यमान, v—उसका वेग, r—कक्ष की त्रिज्या)। दायां पक्ष इस बल के बराबर—नाभिक और एलेक्ट्रोन का आकर्षण-बल—है, जो नाभिक के धनावेश (Ze) और एलेक्ट्रोन के आवेश (e) का गुणनफल बटा उनकी दूरी के वर्ग के बराबर है। कक्ष पर एलेक्ट्रोन की गतिमात्रा में छिन्न रूप से होने वाले परिवर्तन के लिए अतिरिक्त शर्त के सहारे अनुमत कक्ष कलित किये जा सकते हैं। गतिमात्रा के

छिन्न—क्वांटमी—मानों को ज्ञात करने से संबंधित पूरी संक्रिया **क्वांटमीकरण** कहलाती है।

परमाणु द्वारा प्रकाश का ऊर्जा $h\nu=E_2-E_1$ वाला क्वांटम उत्सर्जित होने की प्रक्रिया मे एलेक्ट्रोन अनुमत कक्ष 2 से अनुमत कक्ष 1 पर संक्रमण करता है और परमाणु ऊर्जा-स्तर E_2 से ऊर्जा-स्तर E_1 पर संक्रमण करता है।

स्वतंत्र परमाणुओं के स्पेक्ट्रम की सहायता से ही उनके विकिरण की आवृत्ति निर्धारित होती है और इसी से एक स्तर से दूसरे पर परमाणु-संक्रमण से उत्सर्जित ऊर्जा—दो स्तरों की और्जिक दूरी—भी ज्ञात हो जाती है।

बोर का सिद्धात विकिरण के क्वांटमी सिद्धांत व क्वाटम-यांत्रिकी के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम था। क्वांटमीकरण की सहायता से बोर विकिरण के समय परमाणु में होने वाली प्रक्रियाओं को समझा सके। बोर के सूत्र से हाइड्रोजन-परमाणु के विकिरण का शुद्ध-शुद्ध हिसाब लगाया जा सकता है। पर जटिल परमाणुओं के विकिरण की ऐसी ही पूर्ण व्याख्या यह सूत्र नहीं दे पाया, यद्यपि इसमें सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये। लेकिन इसकी सहायता से जटिल परमाणुओं के विकिरण की प्रकृति समझी जा सकती है। यथा, 11 एलेक्ट्रोनों से बने सोडियम-परमाणु के स्पेक्ट्रम में एक-दूसरे के बहुत निकट स्थित दो चमकदार पीली रेखाएं होती हैं (चित्र 35)। एक रेखा तरंग-लंबाई 0.5896 μm के प्रकाश-विकिरण से बनी होती है (इसे D_1 कहते हैं) और दूसरी तरंग-लंबाई 0.5890 μm के प्रकाश-विकिरण से (इसे रेखा D_2 कहते हैं)। सूत्र के सहारे क्वांटमों की ऊर्जा कलित करके सोडियम के उस ऊर्जा-स्तर का आरेख प्राप्त किया जा सकता है, जिससे यह पीला द्विक विकिरणित होता है (रेखा D_1 तथा D_2 को पीला द्विक कहते हैं)। ऊर्जा-स्तरों के आरेख से यह समझने में सहायता मिलती है कि तापदीप्त वल्ब के सतत स्पेक्ट्रम में चमकदार रेखाओं

चित्र 35. सोडियम-परमाणु द्वारा प्रकाश का उत्सर्जन और अवशोषण ।
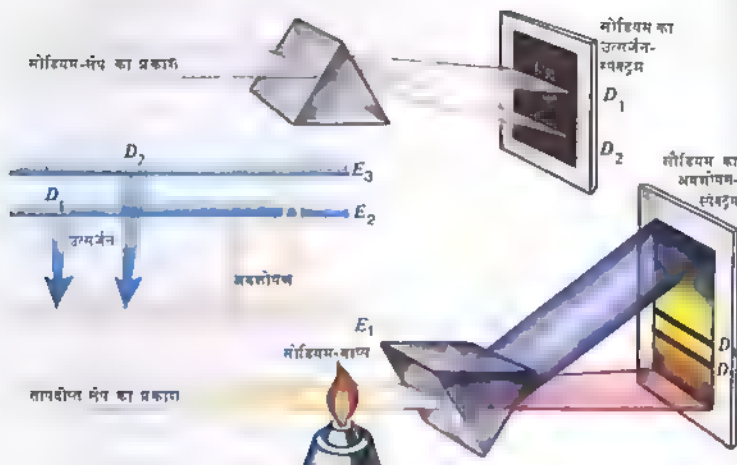
D_1 तथा D_2 की जगह अंधेरी रेखाएं क्यों मिलती हैं, जब उसका प्रकाश सोडियम लवण से रंगीन की गयी लौ से गुजरता है (चित्र 35)।

वर्तमान समय में वैज्ञानिकगण परमाणुओं के स्पेक्ट्रम और अन्य सूक्ष्म परमाणुक संवृत्तियों का विश्लेषण और उन पर मनन क्वांटम-यांत्रिकी की सहायता से ही करते हैं। विज्ञान की शाखा के रूप में क्वांटम-यांत्रिकी का जन्म "क्वांटम" की अवधारणा प्रयुक्त करने के बाद हुआ था, जिसे प्लांक ने परम काले पिंड का स्पेक्ट्रम समझाने के लिए जन्म दिया था।

क्वांटम-यांत्रिकी के विकास में 1917 में प्रकाशित आइन्सटाइन

की कृति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उससे एक सैद्धांतिक रूप से महत्वपूर्ण भौतिक नियम—प्लांक का सूत्र—उपलब्ध हुआ। साथ ही, आइन्सटाइन ने स्थापित किया कि परमाणुओं का तथाकथित **बाध्य या प्रेरित विकिरण** भी होता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके आधार पर आदर्श प्रकाश-स्रोत—लेसर—रचे जाते हैं।

आइए, हम भी आइन्सटाइन के तर्क को समझने की कोशिश करें। इन्हें समझना कोई आसान काम नहीं है। इसलिए इस अनुच्छेद का अंतिम भाग पढ़ने वालों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। लेकिन जो भौतिकविद बनने का निश्चय कर चुके हैं, उनके लिए यह श्रम बेकार नहीं जायेगा। क्या यह लुभावना नहीं है कि खुद क्वांटमी सूत्र निकालना सीख लें, प्रेरित विकिरण क्या है, यह समझ लें, और अंत में, वास्तविक क्वांटमी कलन संपन्न करना सीख लें, जिसे खुद आइन्सटाइन ने किया था! आइन्सटाइन की विधि से प्लांक का सूत्र निकालने के लिए आवश्यक गणितीय संक्रियाएं सातवीं कक्षा का विद्यार्थी भी संपन्न कर सकता है।

बोर के सिद्धांत से निष्कर्ष निकलता था: विकिरण अलग-अलग परमाणु करते हैं। तप्त ठोस पिंड में परमाणु एक-दूसरे के साथ अत्यधिक शक्ति से क्रिया करते हैं। फल यह होता है कि तप्त ठोस पिंड में बहुत सारे ऊर्जा-स्तर मौजूद रहते हैं, जिनसे परमाणु विकिरण कर सकते हैं। आइन्सटाइन ने परमाणु के ऊर्जा E_1 तथा E_2 वाले दो स्तरों पर गौर किया था।

परमाणु निचले स्तर E_1 से ऊपरी स्तर E_2 पर तभी आयेगा, जब वह ऊर्जा का E_2-E_1 अंश अवशोषित करेगा या, जैसा कि अब कहते हैं, क्वांटम $h\nu_{12}=E_2-E_1$ अवशोषित करेगा। अब हिसाब लगाने की कोशिश करते हैं कि एक सेकेंड में ऐसे कितने संक्रमण होंगे।

मान लें कि सेब के पेड़ तले जमीन पर N_1 सेब पड़े हुए हैं (चित्र 36)। यह कोई साधारण नहीं, क्वांटमी पेड़ है। यदि जमीन

N_2
E_2
$h\nu$
$h\nu$
$h\nu$
K_{1-2}
$B_{12}N_1I(\nu) = B_{21}N_2I(\nu) + A_{21}N_2$
I
III
II
K_{2-1}
N_1
$h\nu$
$h\nu$
E_1
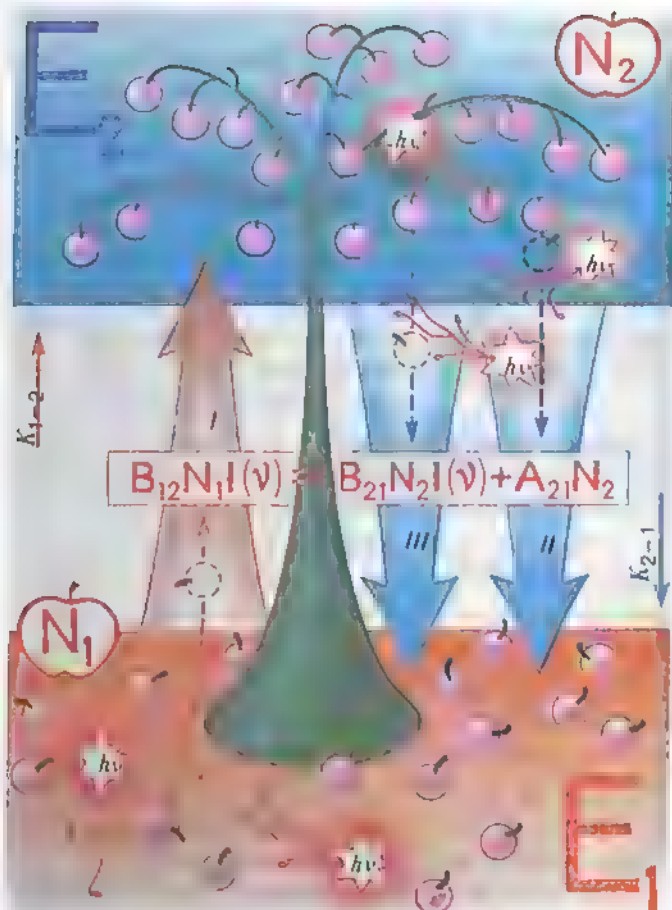
चित्र 36. "क्वांटमी सेब के वृक्ष" का आरेख आइन्सटाइन के तर्कों को समझने में सहायक होता है। I—प्रकाश का अवशोषण, II—स्वतः-स्फूर्त उत्सर्जन, III—प्रेरित (बाध्य) उत्सर्जन।

पर पड़े सेब में क्वांटम $h\nu_{12}$ आकर लग जायेगा, तो सेब उड़कर पुनः डाली में लग जायेगा। N_1 सेब पर प्रति सेकेंड $I(\nu)$ क्वांटम गिरते हैं। सेब में क्वाटम के लगने की संभाव्यता वर्ण S से द्योतित करें। राशि S सेबों पर गिरने वाले क्वांटमों के साथ समानुपाती है: $S = B_{12}I(\nu)$। सचमुच यदि आप किसी लक्ष्य पर निशाना साधते हैं, तो गोलियां जितनी ही अधिक संख्या ($I(\nu)$) में चलायेंगे, लक्ष्य पर उनके लगने की संभावना उतनी ही अधिक होगी। $I(\nu)$ से ज्यादा गोलियां लक्ष्य पर नहीं लग सकतीं। यदि आप बिल्कुल पक्के निशाने-बाज हैं, तभी लक्ष्य पर लगी गोलियों की संख्या "चलायी गयी गोलियों" की संख्या $I(\nu)$ के बराबर हो सकती है। लेकिन क्वांटमी गोलियों की बौछार अंधाधुंध होती है, निशाना देखकर गोली नहीं चलती; राशि B_{12} इस चांदमारी में निशाना लगने की क्षमता (लक्ष्यवेधिता) की माप है। निस्संदेह, वह हमेशा इकाई से कम होगी।

अब, सेब में क्वांटमों के लगने की पूर्ण संख्या प्राप्त करने के लिए राशि S में संख्या N_1 से गुणा करते हैं। लक्ष्यवेध की पूर्ण संख्या एक सेकेंड में जमीन से डाली तक के संक्रमणों की संख्या के बराबर है। इस राशि को हम K_{1-2} से द्योतित करते हैं, $K_{1-2} = B_{12}I(\nu)N_1$ होगा। अब हिसाब लगायें कि कितने परमाणु ऊपरी स्तर से निचले स्तर पर संक्रमण करते हैं। यदि पेड़ पर पके सेबों की संख्या N_2 है, तो स्व-भावतः जितना अधिक N_2 होगा, इकाई समय में उतने ही अधिक सेब जमीन पर गिरेंगे। जाहिर है कि जमीन पर इकाई समय में खुद-ब-खुद (स्वतःस्फूर्त, जैसा कि भौतिकविद कहते हैं) गिरने वाले सेबों की संख्या

पके सेबों की संख्या N_2 के साथ समानुपाती होगी। अतः सूत्र मिलता है : $K_{2-1}=A_{21}N_2$।

यह जरूरी है कि क्वांटमी पेड़ से गिरने वाले सेबों की संख्या K_{2-1} और जमीन से उड़कर डाली पर लगने वाले सेबों की संख्या K_{1-2} आपस में बराबर हों। यदि ऐसा नहीं होगा, तो राशि $I(\nu)$ में समय के अनुसार परिवर्तन होने लगेगा। लेकिन प्रयोग दिखाते हैं कि स्थिर तापक्रम तक तप्त, अर्थात तापक्रमी संतुलन में स्थित, ठोस पिंड इकाई समय में क्वांटमों की स्थिर संख्या $I(\nu)$ उत्सर्जित करता है। अतः राशि K_{1-2} तथा K_{2-1} को बराबर करने पर $B_{12}N_1I(\nu)=A_{21}N_2$ सम्बंध प्राप्त होगा। इसे हल करने पर :

$$I(\nu)=\frac{A_{21}N_2}{B_{12}N_1}.$$

एक बहुत ही अच्छा नियम है. यदि पिंड तापीय संतुलन की अवस्था में है, तो ऊर्जा E_2 वाले कणों की संख्या कम होती है बनिस्वत कि ऊर्जा E_1 वाले कणों की संख्या (जब $E_2>E_1$ होता और $N_2=N_1e^{-\frac{E_2-E_1}{kT}}$, या $\frac{N_2}{N_1}=e^{-\frac{E_2-E_1}{kT}}$)। यहां e नैसर्गिक लघुगणकों का आधार है; इस संख्या का मान लगभग 2.73 है। राशि kT तापक्रम T तक तप्त पिंड के परमाणु की औसत गतिज (या और सही कहें तो औसत वर्गी) ऊर्जा है। सैद्धांतिक भौतिकी में यह नियम सरल मान्यताओं से प्राप्त हुआ है, पर सूत्र का निष्कर्षण बहुत जटिल है। फिर भी यह कंठस्थ करने लायक सूत्र है, क्योंकि यह विभिन्न भौतिक नियम-संगतियों के निष्कर्षण में प्रयुक्त होता है (चित्र 37)। अब आवृत्ति पर प्रकाश-बल की निर्भरता के लिए व्यंजन $I(\nu)=\frac{A_{21}}{B_{12}}e^{-\frac{E_2-E_1}{kT}}$ प्राप्त होता है। A_{21} तथा B_{12} मात्र संख्याएं हैं और उनमें कितना भी परिवर्तन क्यों न किया जाये, इस व्यंजन से

चित्र 37. सागर-स्तर से ऊपर जाने पर वातावरण के इकाई आयतन में स्थित गैसाणुओं की संख्या नियम $n=n_0e^{-\frac{E_2-E_1}{kT}}$ के अनुसार घटती है। E_2—ऊंचाई H पर अणु की स्थितिज ऊर्जा है, E_1—सागर-स्तर पर अणु की स्थितिज ऊर्जा है। व्यूह की संतुलन-अवस्था में ऊर्जा पर परमाणु-संख्या की निर्भरता निर्धारित करने के लिए यह सूत्र हमेशा काम आ सकता है।
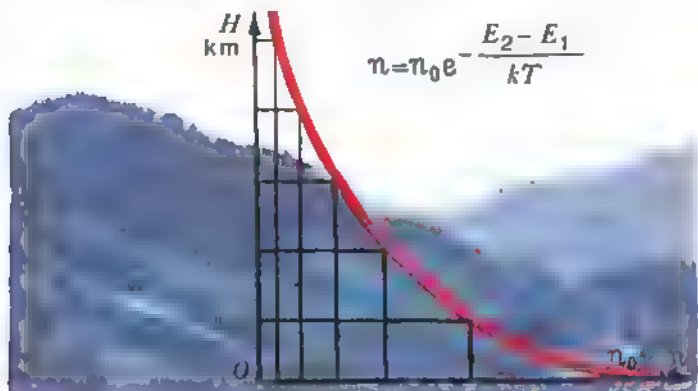
प्लांक का सूत्र नहीं मिलेगा। लेकिन प्लांक का सूत्र ही प्रकृति में होने वाली प्रक्रिया को ठीक-ठीक प्रतिबिंबित करता है। हमारे तर्क में भी कोई गलती नहीं दिखायी देती। इसका मतलब है कि कोई ऐसी प्रक्रिया रह गयी है, जिस पर हमने ध्यान नहीं दिया। यही आइन्सटाइन की खोज का सार है। उन्होंने अनुमान लगाया : परमाणु अपने पास से उड़ते हुए क्वांटम के प्रभाव से भी ऊपरी स्तर E_2 से निचले स्तर E_1 पर संक्रमण कर सकता है, यदि पास उड़ते क्वांटम की ऊर्जा संक्रमण K_{1-2} के लिए आवश्यक ऊर्जा $h\nu_{12}$ के बराबर है। आइन्सटाइन के अनुसार, ऐसे क्वांटम परमाणुओं को ऊपरी ओजिक अवस्था से निचली में संक्रमण करने के लिए और साथ ही अपने जैसा क्वांटम उत्सर्जित

करने के लिए विवश करते हैं। यदि हम अपने सेब वाला दृष्टांत उपयोग में लायें, तो इसका मतलब होगा कि कुछ क्वांटम सेब में लगकर नहीं, बल्कि उसे पास से झकझोर कर गिराते हैं। इस प्रक्रिया में पास से गुजरता हुआ क्वांटम अवशोषित नहीं होता, वरन् एक अतिरिक्त क्वांटम उत्पन्न हो जाता है। "झकझोर कर" गिराये गये क्वांटमों की संख्या ऊपरी ऊर्जिक अवस्था में स्थित परमाणुओं की संख्या N_2 के साथ समानुपाती होती है। यह राशि $B_{21}N_2$ के बराबर है। इसलिए वास्तव में संक्रमण की संख्या K_{2-1} संख्या $A_{21}N_2$ (डालियों से स्वतःस्फूर्त गिरने वाले सेबों की संख्या) जोड़ $B_{21}N_2I(\nu)$ के बराबर होगी ($B_{21}N_1=h\nu_{21}$ ऊर्जा वाले क्वांटमों के प्रवाह से गिरे सेबों की संख्या और $I(\nu)$=प्रवाह की तीव्रता)।

अब ठोस पिंड के तापीय संतुलन से प्राप्त शर्त $K_{1-2}=K_{2-1}$ को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है :

$$B_{12}N_1I(\nu)=A_{21}N_2+B_{21}N_2I(\nu).$$

सरल क्रियाएं सम्पन्न करने पर

$$I(\nu)=\frac{A_{21}}{B_{12}e^{\frac{h\nu}{kT}}-B_{21}}$$

(ध्यान दें कि यहां $\frac{N_1}{N_2}=e^{\frac{h\nu}{kT}}=e^{-\frac{E_2-E_1}{kT}}$ सम्बंध का उपयोग हुआ है।)

$I(\nu)$ का सूत्र प्लांक के सूत्र से संपात करता है, यदि यह मान लें कि $B_{12}=B_{21}$ और व्यतिमान $\frac{A_{21}}{B_{12}}=\frac{2\pi h\nu^3}{c^2}$ है। पर प्लांक का सूत्र सही है। इसलिए संद (संगुणक) A_{21}, B_{12}, B_{21} के आपसी सम्बंध भी सत्य होने चाहिए, जिनसे यह सूत्र मिलता है।

ये परिणाम आइन्सटाइन ने 1917 में प्राप्त किये थे। अब यदि भौतिकविद प्रकाश-अवशोषण का वेग (एक सेकेंड में संक्रमण-संख्या K_{1-2}) नाप ले, तो आइन्सटाइन द्वारा प्राप्त परिणामों से बाध्य और स्वतःस्फूर्त विकिरणों के वेग, राशियां A_{21}, B_{12} और B_{21} (इन्हें हम आइन्सटाइन के गुणांक कहते हैं) भी ज्ञात कर लेगा। सैद्धांतिक रूप से एक साथ तीनों गुणांकों का कलन सिर्फ क्वांटमी विद्युत्प्रवेगिकी की सहायता से किया जा सकता है; इस विज्ञान का जन्म आइन्सटाइन की खोज के 10 वर्ष बाद हुआ था।

आइन्सटाइन द्वारा खोजे गये बाध्य विकिरण को हमारे जीवन में स्थान मिले, इसमें 40 वर्ष से अधिक समय लग गया। बाध्य या, जैसा कि वैज्ञानिकगण कहते हैं, प्रेरित विकिरण की प्रक्रिया ही वह भौतिक आधार है, जिस पर विद्युत्चुंबकीय विकिरण के अनोखे स्रोत—मेसर और लेसर—बने हैं, जिनकी सहायता से विज्ञान और तकनीक के अनेक क्षेत्रों में क्रांति हुई है।

लेसर

शब्द का अर्थ. 'लेसर' शब्द का अर्थ क्या है ? यह अंग्रेजी नाम Light Amplification by Stimulated Emission of Radiation का संक्षिप्त रूप LASER है, जिसका अर्थ है 'बाध्य विकिरण से प्रकाश-प्रवर्धन'। सोवियत विज्ञान-साहित्य में इसे प्रकाशीय क्वांटमी जनित्र भी कहते हैं।

अब लेसर में होने वाली प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश करते हैं। जब परमाणु प्रकाशीय ऊर्जा के क्वांटम—फोटोन—को अवशोषित करता है, तो उसकी आंतरिक ऊर्जा में अवशोषित क्वांटम की ऊर्जा जितनी वृद्धि हो जाती है। कहा जाता है कि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप परमाणु अधिक उच्च ऊर्जिक स्तर पर संक्रमण करता है और नया स्तर 'पुराने' स्तर से अवशोषित क्वांटम की ऊर्जा की मात्रा के बराबर अधिक ऊंचा होता है। साधारणतः परमाणु उस अवस्था की ओर प्रवृत्त रहता है जिसमें उसकी ऊर्जा यथासंभव अल्पतम रहे। ऐसी अवस्था को मूल अवस्था कहते हैं। मूल अवस्था में परमाणु जितनी ऊर्जा रखता है, उससे अधिक उर्जा होने पर परमाणु को उद्दीप्त कहते हैं। उद्दीप्त परमाणु अतिरिक्त ऊर्जा से नियमतः बहुत जल्द—एक सेकेंड के दस करोड़वें अंश में ही—छुटकारा पा लेता है। इस प्रक्रिया में परमाणु फोटोन उत्सर्जित करता है जिसकी ऊर्जा E_2-E_1 के बराबर होती है (चित्र 38)। ज्यादातर स्थितियों में परमाणु अतिरिक्त ऊर्जा को बिना किसी बाह्य प्रभाव के ही मुक्त कर देता है। पर, जैसा कि हम जानते हैं, उच्च

चित्र 38. प्रेरित विकिरण ।
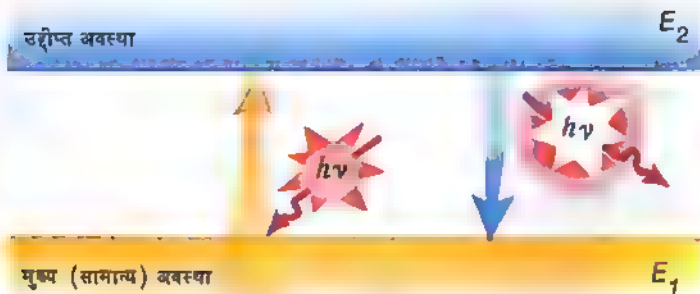
ऊर्जिक स्तर से निम्न पर संक्रमण पास से गुजरते क्वांटम के प्रभाव से भी संभव है । इस तरह का क्वांटम (फोटोन) अपने 'मित्र' को स्वतंत्र करता हुआ अपने साथ भगा ले जाता है, यदि परमाणु के उद्दीपन की ऊर्जा स्वतंत्र फोटोन की ऊर्जा के बराबर होती है । ध्यातव्य है कि 'हरण किये गये' फोटोन के विद्युचुंबकीय दोलनों की प्रावस्था तथा उनका तल 'हरणकर्त्ता' फोटोन जैसे ही होते हैं । इस प्रकार, उद्दीप्त परमाणुओं वाले द्रव्य से गुजरता हुआ ज्योति-प्रवाह, जिसकी ऊर्जा उद्दीपन-ऊर्जा के बराबर है, परमाणुओं को अधिक निम्न स्तर पर उतारने की प्रवृत्ति रखता है ।

ऋणात्मक अवशोषण. लेसर के आविष्कार के कुछ समय पहले भौतिकविद तथाकथित **प्रकाश का ऋणात्मक अवशोषण** नामक एक अनोखी संवृत्ति के अध्ययन में लगे हुए थे । सबसे पारदर्शक द्रव्य से भी गुजरने पर प्रकाश का पुंज क्षीण हो जाता है : पुंज के फोटोनों का एक भाग द्रव्य द्वारा अवशोषित हो जाता है और उनकी ऊर्जा ताप में परिणत

हो जाती है। पर अपवाद हर नियम का होता है। कुछ क्रिस्टलों में प्रकाश क्षीण नहीं होता, और भी प्रवर्धित हो जाता है! यह अतिरिक्त ऊर्जा कहां से आती है?

पता चला कि इस हालत में क्रिस्टल से प्रकाश-किरण गुजरने के पहले उसे शक्तिशाली ज्योति-प्रवाह से प्रकाशित किया गया था। इस लिए क्रिस्टल के अधिकांश परमाणु उद्दीप्त अवस्था में आ गये थे। ये परमाणु ऊर्जा $h\nu$ वाले फोटोन उत्सर्जित करके ही उद्दीप्त अवस्था से अधिक निचले औजिक स्तर पर संक्रमण कर सकते हैं। इतनी ऊर्जा वाले फोटोनों का वे अवशोषण नहीं कर सकते—वे पहले से ही तृप्त हैं। लेकिन ऊर्जा $h\nu$ वाला आपतनरत पुंज उतनी ही ऊर्जा के नये-नये फोटोनों को अपने साथ भगाता चलता है और साथ ही क्रिस्टल के परमाणुओं को निम्न स्तर पर उतरने को बाध्य भी करता जाता है। गिरने वाले पुंज में अतिरिक्त ऊर्जा उत्पन्न होती है। अतिरिक्त कांति वाला ऐसा क्रिस्टल ही लेसर की ओर पहला कदम है।

रूबी का लेसर. पहला वास्तविक लेसर रूबी (लाल) से बनाया गया था, जो एक जमाने में बहुत कीमती दुर्लभ पत्थर था। अब यह कृत्रिम रूप से बड़ी मात्रा में बनाया जा सकता है। रूबी अलुमीनियम आक्साइड Al_2O_3 का क्रिस्टल है जिसमें क्रोमियम के परमाणु मिश्रित होते हैं। काम करने लायक रूबी का लेसर पहले-पहल 1960 में बना था। इसका सक्रिय अंग रूबी की छड़ था, जो रूप और आकार में साधारण पेंसिल की याद दिलाता है। इसमें क्रोमियम की मात्रा सिर्फ 0.05% थी। क्रोमियम से इतनी सांद्र रूबी का रंग गुलाबी-सा होता है; यदि क्रिस्टल में क्रोमियम की मात्रा अधिक होती है तो उसका रंग और गहरा, लाल हो जाता है। लेसर-प्रक्रिया में क्रोमियम के पर-माणु मुख्य भूमिका निभाते हैं। वे स्पेक्ट्रम के पराबैंगनी परास की किरणों, पीले और हरे प्रकाश को अवशोषित कर लेते हैं। रूबी सिर्फ

चित्र 39a. गुलाबी रूबी के ऊर्जा-स्तरों का आरेख।
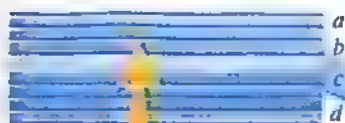
चित्र 39b. रूबी-लेसर।
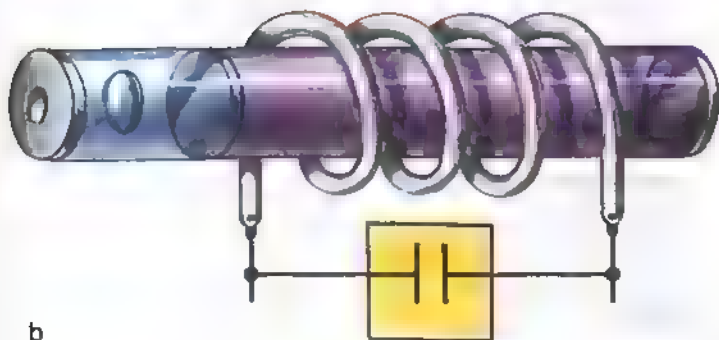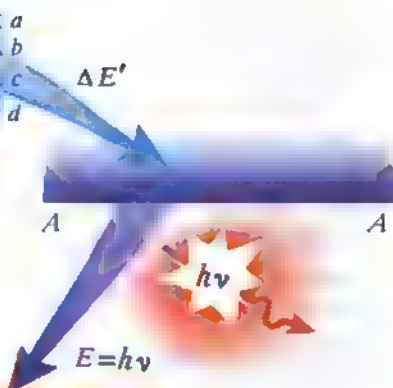
लाल और नीले प्रकाश के लिए पारदर्शक है। इन विकिरणों का मिश्रण ही रूबी से निकलकर उसे उसका लंछक रंग प्रदान करता है। रूबी के क्रिस्टल में उपस्थित क्रोमियम-परमाणु के दो औंजिक अंतरालों में औंजिक स्तर विशेष सघन रूप में पाये जाते हैं। ये अंतराल *ab* और *cd* **अवशोषण-पट्टियां** कहलाते हैं (चित्र 39a)।

क्वांटम $h\nu_1$ अवशोषित करके क्रोमियम का परमाणु इन पट्टियों में स्थित किसी स्तर पर संक्रमण करता है, पर वहां देर तक रुका नहीं रहता। जल्दी ही रूबी की क्रिस्टलिक जाली को ऊर्जा $\Delta E'$ देकर वह निम्नतर स्तर *AA* पर उतर आता है। यह एक विशेष स्तर है। यहां से परमाणु लंबे समय तक मूल अवस्था में वापस नहीं लौटता। यह 'लंबा समय' सामान्य अवधारणाओं के अनुसार बहुत लंबा नहीं है—सेकेंड का सहस्रांश है, लेकिन परमाणु के पैमाने पर बहुत लंबा है—साधारण उद्दीप्त परमाणु के जीवन से करीब एक लाख गुना लंबा। इसीलिए परमाणु की यह अवस्था **अधिस्थायी** कहलाती है।

शक्तिशाली लेसर में रूबी की छड़ का व्यास कुछेक सेंटीमीटर होता है और लंबाई कुछेक डेसीमीटर होती है। इसके सिरे अच्छी तरह से चिकने किये रहते हैं। एक सिरे पर समतल दर्पण लगाया जाता है जो प्रकाश को पूरी तरह से परावर्तित कर देता है। दूसरे सिरे पर लगा दर्पण प्रकाश का कुछ भाग परावर्तित करता है और कुछ भाग अपने से पार गुजरने देता है (चित्र 39b)।

लेसर की कौंध प्राप्त करने के लिए उच्च वोल्टता का संयंत्र चालू करते हैं। इससे विद्युधारित्र आविष्ट होते हैं। इसके बाद ऑपरेटर बटन दबाता है और धारित्रों में संचित ऊर्जा रूबी की छड़ के गिर्द स्थित गैसनिरावेशक बल्वों द्वारा उत्सर्जित होती है। गैसनिरावेशक बल्ब फोटोग्राफी के लिए प्रयुक्त फ्लैश-बल्ब की तरह होते हैं, पर इनकी शक्ति कहीं अधिक होती है। बल्वों से कौंध के बाद अगले ही क्षण रूबी की छड़ से एक शक्तिशाली ज्योति-प्रवाह निकलता है। यदि उसे धातु

के पट्टे पर संकेंद्रित किया जाये तो लेसर का प्रकाश उसे 'जलाकर' उसमें गहरा गड्ढा बना देता है।

लेसर-स्पंद के क्षण कौन-सी भौतिक प्रक्रियाएं घटित होती हैं ?

गैसनिरावेशक बल्ब की कौंध के साथ विभिन्न ऊर्जाओं वाले फोटोनों का शक्तिशाली पुंज उत्पन्न होकर रूबी की छड़ पर गिरता है। इन फोटोनों को अवशोषित करके क्रोमियम के लगभग सारे परमाणु उद्दीप्त अवस्था में आ जाते हैं और सेकेंड के लगभग दस करोड़वें अंश में वे अधिस्थायी स्तर AA पर उतर आते हैं। इस अवस्था में क्रोमियम एक लंबे समय तक (10^{-4} s) रहता है। क्रोमियम या किसी अन्य तत्त्व के परमाणुओं की अवस्था (या अधिस्थायी अवस्था में परिणत होने वाली किसी अन्य उद्दीप्त अवस्था) में लाने की क्रिया को प्रकाशीय पंपन कहते हैं।

अधिस्थायी अवस्था से परमाणु विभिन्न दिशाओं में स्वतःस्फूर्त क्वांटम उत्सर्जित करते रहते हैं। हर उत्सर्जित क्वांटम अधिस्थायी अवस्था में स्थित अन्य परमाणुओं के पास से गुजरते समय उनसे नये-नये क्वांटमों को मुक्त करता जाता है। यदि स्वतःस्फूर्त निकला हुआ फोटोन, बेलन के अक्ष से दूर दिशा में चलता है तो उससे प्रेरित फोटोन बहुत जल्द ही क्रिस्टल से बाहर निकल आते हैं और शक्तिशाली स्पंद नहीं मिलता। लेसर-स्पंद तब उत्पन्न होता है, जब लेसर के अक्ष के अनुतीर चलने वाला फोटोन उत्सर्जित होता है। ऐसा फोटोन अपने साथ-साथ अनेक फोटोनों को निकालता हुआ चलता है। उनकी संख्या में वृद्धि पहाड़ो पर से शैल-प्रपात में पत्थरों की संख्या बढ़ने के नियमों के अनुसार होती है। फोटोन रूबी के सिरों पर स्थित दर्पणों से परावर्तित होते हुए छड़ में कई चक्कर लगाते हैं। इसके फलस्वरूप लाल प्रकाश का शक्तिशाली स्पंद उत्सर्जित होता है जो अर्धपारदर्शक दर्पण पार करके निकलता है (चित्र 40)।

पहली बात यह है कि इस स्पंद का प्रकाश एकवर्णी है; रूबी की

चित्र 40. लेसर में फोटोन-
प्रवाह की उत्पत्ति ।
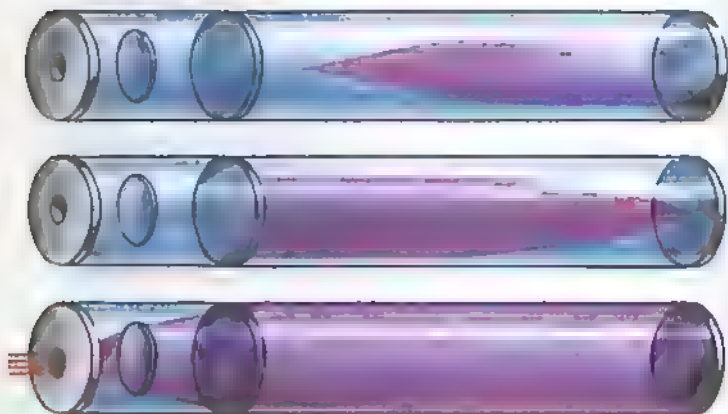
छड़ के अनुतीर उत्सर्जित प्रथम क्वांटम अपने साथ वैसे ही क्वांटम निकाल सकता है, जिनकी ऊर्जा खुद की ऊर्जा के बराबर हो । दूसरी बात, लेसर-पुंज एक बहुत छोटे कोण पर अपसृत होता है और निकलने वाले फोटोन उसी दिशा में चलते हैं, जिसमें उन्हें निकालने वाला प्रथम मूल फोटोन चलता है । और अंत मे, लेसर-विकिरण संसक्त होता है क्योंकि सभी क्वांटम समान प्रावस्था में उत्सर्जित होते हैं ।

गैस लेसर. सिर्फ ठोस पिंड ही लेसर प्रकाश नहीं देते । द्रव और गैस लेसर भी होते हैं ।

यदि बेलनाकार बरतन में हीलियम और नेयन का मिश्रण भर दिया जाये और भीतर धातु के विद्युत (एलेक्ट्रोड) लगाकर उन्हें उच्च वोल्टता के स्रोत से जोड़ दिया जाये, तो गैसों का मिश्रण लाल-सी चमक

चित्र 41. हीलियम-नेयन से बना लेसर ।
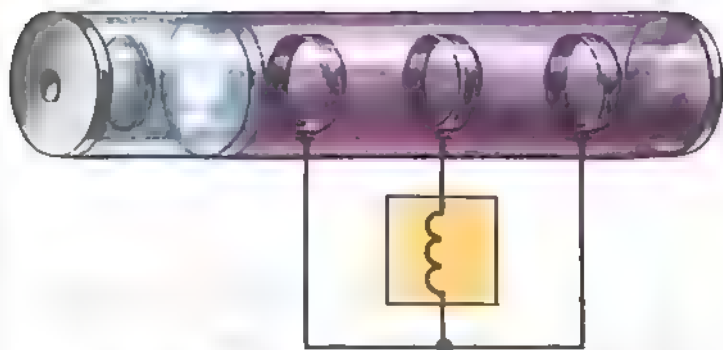
देने लगेगा, ठीक वैसी ही, जैसी नेयन के बल्ब देते हैं (चित्र 41)। कांच की नली में धीमा निरावेशन शुरू हो जाता है। ऐसे निरावेशन में गैस के परमाणुओं के बीच क्षिप्र एलेक्ट्रोन दौड़ते रहते हैं। वे हीलियम के परमाणुओं से टकराते हैं और उन्हें उद्दीप्त कर देते हैं। एलेक्ट्रोन नेयन से भी टकराते हैं, पर नियमतः उन्हें सिर्फ निम्न स्तरों तक ही उद्दीप्त करते है। पर हीलियम के उद्दीप्त परमाणु नेयन-परमाणुओं से टकराकर उन्हें अपनी ऊर्जा प्रदान करते हैं और उन्हें उच्च स्तरों तक उद्दीप्त कर देते हैं। इन उच्च स्तरों से नेयन-परमाणु बीच की अवस्था E_1 पर उतर आते हैं (चित्र 42)।

अब यदि हीलियम-नेयन मिश्रण से भरे बरतन के सिरों पर वैसे ही दर्पण लगा दिये जायें, जैसे रूबी वाले लेसर में, तो बरतन के अक्ष के अनुतौर उत्सर्जित $E_1 - E_2$ ऊर्जा वाला फोटोन लेसर-विकिरण उत्पन्न कर देगा। गैसीय लेसर में नेयन और हीलियम के उद्दीप्त परमाणुओं की संख्या निरंतर परिपूरित होती रहती है। इसीलिए हीलियम-नेयन का लेसर, सतत रूप से प्रकाश का विकिरण करता रहता है।

चित्र 42. हीलियम और नेयन के और्जिक स्तर का आरेख (1. दृश्यमान लेसर-विकिरण, 2. नेयन की सामान्य प्रदीप्ति)। सिर्फ वे स्तर दिखाये गये हैं, जो गैस-लेसर के दृश्य-विकिरण की उत्पत्ति में भाग लेते हैं। वास्तव में इन गैसों के ऊर्जा-स्तरों का आरेख कहीं अधिक जटिल है।
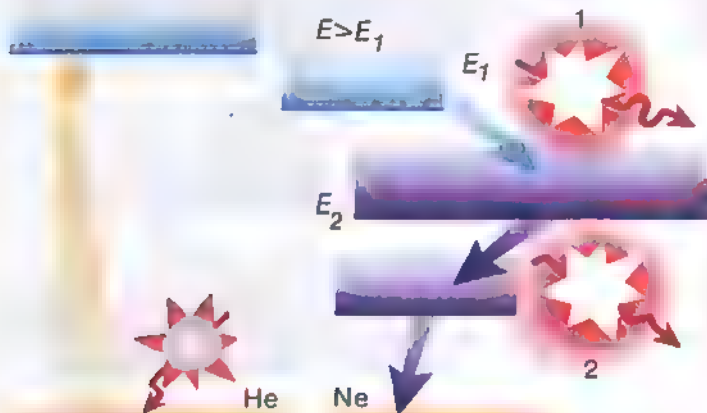
द्रव लेसर. द्रव विकिरण पिंड का लेसर बहुत ही रोचक उपकरण है। हम जानते हैं कि रूबी वाले लेसर में मुख्य भूमिका क्रोमियम के परमाणु अदा करते हैं।

ऐसे भी लेसर हैं जिनमें छड़ रूबी की नहीं, कांच की होती है और कांच, जैसे कि अक्सर कहते हैं, जरूरत से ज्यादा ठंडा किया हुआ द्रव है। क्रोमियम-परमाणुओं की भूमिका कांच में मिश्रित विरल मृदा तत्त्व—नियोडियम—के परमाणु निभाते हैं।

नियोडियम के परमाणु द्रव में अधिक उन्मुक्त गति करेंगे और फलतः घोलक द्रव के परमाणुओं के साथ अत्यधिक टकराया करेंगे। इन टक्करों के दरम्यान नियोडियम के उद्दीप्त परमाणु अपनी ऊर्जा घोलक
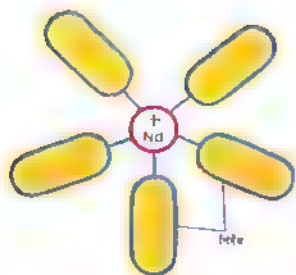
चित्र 43. लिगैंडों से सुरक्षित नियोडियम-आयन।

के परमाणुओं को दे देंगे और वह बेकार खोती जायेगी, ताप में परिणत होती रहेगी। ऐसा सदा होता है, हालांकि एलेक्ट्रोन, जो एक कक्ष से दूसरे कक्ष पर आते समय फोटोन उत्सर्जित करते हैं, नियोडियम-परमाणु को घेर रखने वाले एलेक्ट्रोनी-अभ्र की बहुत गहराई में होते हैं। लेसरी विकिरण की परिस्थितियां निर्मित करने के लिए सक्रिय परमाणुओं की रक्षा उनके गिर्द मटरगश्ती करने वाले घोलक परमाणुओं से करनी पड़ेगी। लेकिन कैसे?

यह समस्या रसायनशास्त्रियों ने हल की। उन्होंने नियोडियम के आयन पर लिगैंड नामक जटिल जैव परमाणु-ग्रुपों का 'कवच' चढ़ा दिया (चित्र 43)। इस प्रकार नियोडियम का आयन घोलक के परमाणुओं के साथ टकराने से बचा रहता है; उसका आचरण वैसा ही होता है मानो वह ठोस पिंड की क्रिस्टलिक जाली में हो।

लेकिन लिगैंड का काम सिर्फ नियोडियम की रक्षा करना नहीं है। उसके और भी कई अनोखे गुण हैं। स्पेक्ट्रम के विस्तृत परास का विकिरण अवशोपित करने की क्षमता के कारण लिगैंड उद्दीप्त हो उठता है और या तो तुरंत मूल अवस्था में संक्रमण कर जाता है या देर तक उद्दीप्त अवस्था में ही रहता है। इस हालत में लिगैंड द्वारा उत्सर्जित

चित्र 44. संक्रमण ऊर्जा-पट्टी A के भिन्न स्तरों से पट्टी B के भिन्न स्तरों पर संभव है। अनुनादक के समंजन के अनुसार लेसर-विकिरण के क्वांटमों की ऊर्जा परिवर्तित की जा सकती है।
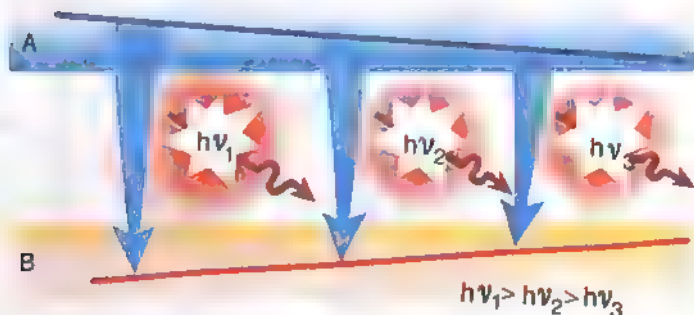
फोटोन लेसर-पुंज में कोई नया गुण नहीं भरेगा, पर अधिस्थायी अवस्था में निर्गंड अपनी ऊर्जा नियोडियम के परमाणु को प्रदान करता है और इस प्रकार नियोडियम के सक्रिय आयनों के प्रकाशीय पंपन की क्रिया में भाग लेता है। ऐसे लेसर में फोटोनों का पुंज उसी तरह से उत्पन्न होता है, जैसे अन्य प्रकार के लेसरों में।

विकिरणकारी रंजक. ऐसे लेसरों की बहुत आवश्यकता होती है जिनमें विकिरण की आवृत्ति नियमित की जा सके। उनकी आवश्यकता अनेक सूक्ष्म अन्वीक्षणों में पड़ती है, जब द्रव्य के साथ विकिरण की व्यतिक्रिया फोटोनों की ऊर्जा पर बहुत अधिक निर्भर करती है। अच्छी तरह से चुनी हुई ऊर्जा वाले फोटोनों के विकिरण से द्रव्य पर अभि-क्रिया करके द्रव्य के रूपांतरणों की जटिल से जटिल विधियों का संचालन किया जा सकता है। ऐसे लेसर बन चुके हैं, जिनमें तरंग-लंबाई परिवर्तित की जा सकती है। इनमें विकिरण (विकिरणकारी)

पिंड विशेष रूप से चुने गये रंजकों का घोल होता है। प्रकाश की उत्पत्ति रंजक द्रव्य के अणुओं की विस्तृत अवशोषण-पट्टियों पर होती है (चित्र 44)।

लेसरों में ऐसे संक्रमण बहुत तेजी से हो जाते हैं और द्रव के अणुओं की गति फोटोनों के लेसर-पुंज पर प्रभाव नहीं डाल पाती। जैव रंजकों के अणु सहायक लेसर की ऊर्जा से या विशेष बल्बों से उद्दीप्त किये जाते हैं। जैव-रंजकों में प्रकाश-अवशोषण की पट्टी बहुत चौड़ी होने के कारण लेसरी प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाले फोटोनों की ऊर्जा सतत रूप से परिवर्तित की जा सकती है (चित्र 35), इसके लिए सिर्फ अनुनादक को आवश्यक तरंग-लंबाई पर समंजित करना पड़ता है या प्रकाशीय पंपन संपन्न करने वाले प्रकाश-स्रोत की आवृत्ति बदलनी पड़ती है।

प्रकाशीय संचार. सामान्य किरणों से लेसरी किरणों की भिन्नता सिर्फ उनकी तीव्र चमक के कारण ही नहीं, उनकी एकवर्णता और संसक्ति के कारण भी है। लेसरी विकिरण के इन गुणों के कारण ही भविष्य में रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रम प्रकाश-किरणों द्वारा प्रसारित किये जा सकेंगे।

सूचना-प्रेषक के रूप में लेसर की उत्कृष्टता समझने के लिए चित्र 45 में दर्शित संचार-प्रणाली को देखें।

पट्टी पर लगातार समान प्रकार के गोले लुढक रहे हैं। बायें से दायें तट पर इकाई समय में आने वाले गोलों की संख्या, और इसलिए दायें तट पर उनके पहुंचने की आवृत्ति, स्थिर राशियां हैं। गोलों की गिनती करके हम यह बता सकेंगे कि पट्टी पर से वे कितनी देर तक लुढ़कते रहे।

ऐसी प्रयुक्ति से कोई खबर प्रेषित करने के लिए गोलों को किसी तरह से चिह्नित करना होगा (जैसे, वर्णमाला के वर्णों से) और उन्हें एक निश्चित क्रम में भेजना व प्राप्त करना होगा। ऐसी स्थिति में,

चित्र 45. गोलों का टेलीग्राफ। एक तट से दूसरे पर गोलों के लुढ़कने की आवृत्ति जितनी ही अधिक होगी, एक तट से दूसरे की ओर उतनी ही अधिक सूचनाएं प्रेषित होंगी।

नियत समय में प्रेषित सूचना की मात्रा (इस उदाहरण में—वर्णों की संख्या) फट्टी से आने वाले गोलों की आवृत्ति के समानुपात में होगी।

लेसर के प्रकाश का सुस्पष्ट ज्यावत वक्र अनंकित गोलों की तरह ही है। ज्यावत प्रकाश-दोलनों को प्रकाश के साथ प्रतिक्रिया करने वाले किसी ग्राहक-उपकरण द्वारा अभिलिखित करके हम सिर्फ इतना जान पायेंगे कि प्रेषक-उपकरण (प्रकाश-विकिरक) का काम शुरू हो गया है, और साथ ही यह निर्धारित कर पायेंगे कि विकिरणित ऊर्जा कहां से आ रही है। अधिक गंभीर सूचनाएं भेजने के लिए गोलों की तरह ज्यावत वक्रों पर भी "चिह्न" बनाने पड़ेंगे। साधारण प्रकाश चाहे एकवर्णी ही क्यों न हो, उसकी किरण को चिह्नित करना संभव नहीं है। साधारण प्रकाश में दोलन बेतरतीब होते हैं। बेतरतीब

चित्र 46. विद्युत्चुंबकीय तरंगों की दोलन-आवृत्ति दुगुनी करने से एक ही "आकृति" के प्रेषण के लिए आवश्यक समय दुगुना कम हो जाता है।
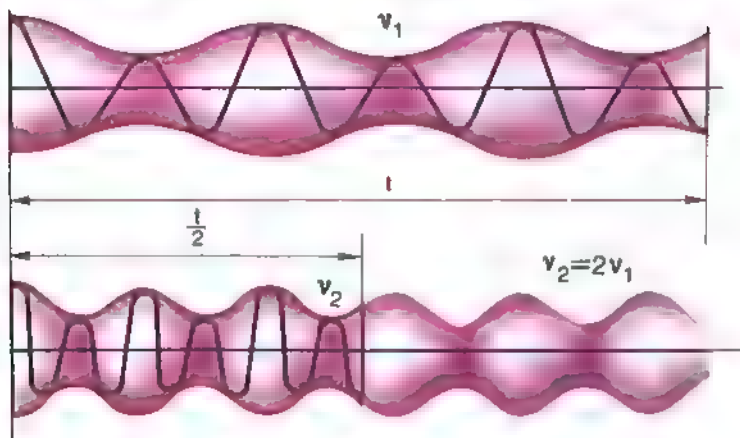
दोलनों की पृष्ठभूमि में सूचना अंकित करना असंभव है। संसक्त किरणों के साथ बात दूसरी है। ऐसी किरण एक तरह से कागज का सादा पन्ना होती है, जिस पर सूचना लिखी जा सकती है। किरण पर चिह्न उसके मोडुलन अर्थात उसके आयाम या आवृत्ति में परिवर्तन के द्वारा लगाया जा सकता है (चित्र 46)। इस स्थिति में प्रेषणाधीन सूचना ज्यावत वक्र पर "बेल-बूटों" के रूप में कोडित की जायेगी। "बेल-बूटों" के प्रेषण में जितना ही कम समय लगेगा, संचार-मार्ग उतना ही प्रशस्त रहेगा। और यह समय, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, विकिरण की आवृत्ति का व्युत्क्रमानुपाती है। इसका मतलब है कि दोलनों की आवृत्ति जितनी ही ऊंची होगी, इकाई समय में उतनी ही अधिक सूचनाएं प्रेषित की जा सकेंगी। रूबी वाले लेसर-विकिरण के

विद्युचुंबकीय दोलनों की आवृत्ति 430 THz (4.3×10^{14} Hz) उस आवृत्ति से करोड़ों गुना अधिक है, जिस पर आजकल टेलीविजन के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इसीलिए लेसर-किरण के पूर्ण उपयोग से उस पर टेलीविजन तथा रेडियो के करोड़ों-करोड़ कार्यक्रम प्रसारित हो सकते हैं।

पर वैज्ञानिकों ने लेसर-किरणों की सभी संभावनाओं के पूर्ण उपयोग की अभी तक कोई विधि नहीं ज्ञात की है—सूचनाओं की बहुत बड़ी मात्रा से लेसर-किरण का मोडुलन संभव नहीं हो पा रहा है। यदि हम गोलों वाले टेलीग्राफ का उदाहरण लें, तो कह सकते हैं कि लेसरी "गोलों" का प्रवाह इतना क्षिप्र है कि सबको चिह्नित करना संभव नहीं होता।

लेसर-विद्युत्केंद्र. जैसा कि कहा जा चुका है, पृथ्वी अपने जीवन और अपने विकास के लिए सौर ऊर्जा की आभारी है। पर सौर ऊर्जा मूलतः नाभिकीय ऊर्जा है। सूर्य के केंद्र में तापनाभिकीय प्रतिक्रियाएं चलती रहती हैं और गामा-क्वांटम उत्पन्न होते हैं, ये प्रकाशीय क्वांटमों (फोटोनों) से दस लाख गुनी अधिक ऊर्जा रखते हैं। सौर द्रव्य से गुजरते समय गामा-क्वांटम कदम-कदम पर द्रव्य के परमाणुओं से व्यतिक्रिया करते हुए 'चूर' होने लगते हैं और कम ऊर्जा वाले क्वांटमों में बदल जाते हैं। सूर्य की सतह तक मुख्यतः प्रकाशीय क्वांटम—फोटोन—ही पहुंच पाते हैं। फोटोनों का प्रवाह सौर द्रव्य की ऊर्जा है, जो पृथ्वी तक बहुत प्रकीर्णित रूप में पहुंचती है। मध्य अक्षांशों पर 1 kw शक्ति प्राप्त करने के लिए कई वर्ग-मीटर विस्तृत सतह से ऊर्जा इकट्ठी करनी पड़ती है, वह भी अच्छी धूप में। पर सूर्य बहुत अनियमित ढंग से 'काम करता' है: रात होती है, बादल छा जाते हैं। सौर प्रवाह मौसम के अनुसार भी बदलता रहता है। तो क्या हम अपने घर—पृथ्वी—पर कृत्रिम सूर्य नहीं बना सकते?

अधिकांशत किसी रसायनिक प्रतिक्रिया को शुरू करने के लिए या उसकी क्षिप्रता बढ़ाने के लिए प्रतिक्रियाशील द्रव्यों को गर्म किया जाता है। तापक्रम-वृद्धि के साथ अणुओं का वेग बढ़ जाता है और टक्कर खाते समय क्षिप्र अणु औजिक बाधा पार कर जाते है, जिससे नये अणु—प्रतिक्रिया के उत्पाद—बनाने में अड़चन होती है। समताप-क्रमी प्रतिक्रियाओं में इससे अतिरिक्त ऊर्जा उत्सर्जित होती है। सौर ऊर्जा नाभिकीय प्रतिक्रियाओं में उत्पन्न होती है जब हाइड्रोजन के नाभिकों से हीलियम बनती है।

पार्थिव परिस्थितियों में तापरेची नाभिकीय प्रतिक्रियाओं को हाइड्रोजन के भारी नाभिकों (ड्युटेरियम, ट्रीटियम) से उत्पन्न कराना अधिक सरल है बनिस्बत कि साधारण हाइड्रोजन के नाभिकों से। ट्रीटियम और ड्युटेरियम के मिश्रण से नाभिकीय प्रतिक्रिया शुरू करने के लिए द्रव्य को दसियों करोड़ डिग्री तापक्रम तक गर्म करना पड़ता है। बात यह है कि भारी हाइड्रोजन के परमाणु-नाभिक मिलकर हीलियम का नाभिक तभी बनाते है, जब वे परस्पर स्पर्श कर पाते हैं।

धन विद्युत से आविष्ट दो नाभिकों को परस्पर स्पर्श करने को विवश कैसे किया जा सकता है, जब निकट आने पर वे बहुत बड़े बल से विकर्षित होने लगते है? इसके लिए जरूरी है कि हाइड्रोजन-नाभिक एक-दूसरे की ओर बहुत बड़े वेग से गतिमान हों। इसके लिए हाइड्रो-जन को करोड़ों डिग्री तापक्रम तक गर्म किया जाता है—जितना ही अधिक तापक्रम होगा, उतना ही अधिक वेग होगा। वैसे इतने ऊंचे तापक्रम पर हाइड्रोजन नहीं रह जाता, वह परमाणु-नाभिकों और एलेक्ट्रोनों के मिश्रण में परिणत हो जाता है जिसे **प्लाज्मा** कहते हैं।

अब तक प्लाज्मा को विद्युत्स्फुलिंगों से गर्म किया जाता था। यदि प्लाज्मा कक्ष की दीवारों के संपर्क में नहीं आता है, तो उसका तापक्रम ऊंचा का ऊंचा बना रहता है। ठंडी दीवारों से प्लाज्मा का संपर्क

रोकने के लिए चुंबकीय क्षेत्र की सहायता ली जाती है। लेकिन बहुत शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र से भी प्लाज्मा को रोककर रखना बहुत ही जटिल काम है। क्या गर्म प्लाज्मा प्राप्त करने की कोई दूसरी विधि नहीं है ?

लेसरी प्लाज्मा. अभी एक भी ऐसा स्रोत ज्ञात नहीं है जो लेसर किरणों की तुलना में ऊर्जा की अधिक सांद्रता दे सके। तीव्र लेसर-विकिरण के कौंध-प्रवाह की शक्ति प्रति वर्ग सेंटीमीटर के हिसाब से करीब 10^{16} W होती है। इस शक्ति की विशालता का अंदाज इसके साथ बड़े से बड़े विद्युकेंद्र की शक्ति की तुलना करके सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। वास्तव में लेसर की कौंध के रूप में उत्सर्जित पूर्ण ऊर्जा बहुत ज्यादा नहीं होती। कौंध सिर्फ 10^{-9} s तक रहती है और क्षेत्र, जिस पर प्रवाह संकेंद्रित होता है, वर्ग माइक्रोमीटर में नापा जाता है। लेकिन उच्च 'तापनाभिकीय' ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ऊर्जा का बहुत ऊंचा घनत्व ही चाहिए।

इसीलिए तो वैज्ञानिकगण हाइड्रोजन के प्लाज्मा को अति उच्च तापक्रम तक गर्म करने के लिए शक्तिशाली लेसर-किरण के उपयोग की विधियां ढूढ़ने में लगे हुए हैं, जिससे तापनाभिकीय प्रतिक्रिया चलायी जा सके।

एक प्रारेख देखें (चित्र 47)। भारी पानी से बनी बर्फ की दसेक माइक्रोमीटर आकार वाली टुकड़ी सब तरफ से लेसर-किरण द्वारा प्रकाशित की जाती है। लेसर की अत्यल्प कौंध ($\sim 10^{-9}$ s) में यदि शक्ति $\sim 10^4$ J उत्सर्जित होती है, तो कौंध को एक विशेष रूप देने पर बर्फ की टुकड़ी से बना प्लाज्मा बहुत कसकर दब जायेगा और उसका घनत्व कई हजार गुना बढ़ जायेगा। उत्तप्त और अति घनी बूंद में तापनाभिकीय प्रतिक्रिया चलने के लिए परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। बर्फ की टुकड़ी बहुत बड़ी नहीं होती, पर 'नाभिकीय दहन'

चित्र 47. ड्युटेरियम-ट्रीटियम की बर्फ में तापनाभिकीय प्रतिक्रिया शुरू करने के लिए उसे सब ओर से लेसर-विकिरण द्वारा गर्म करना पड़ता है (चित्र में फोकस करने वाले सभी लेंस एक ही तल पर दिखाये गये हैं, पर वास्तविकता में बर्फ की गोली त्रिविम व्योम में सब ओर से स्थित लेंसों के व्यूह द्वारा गर्म की जाती है)।
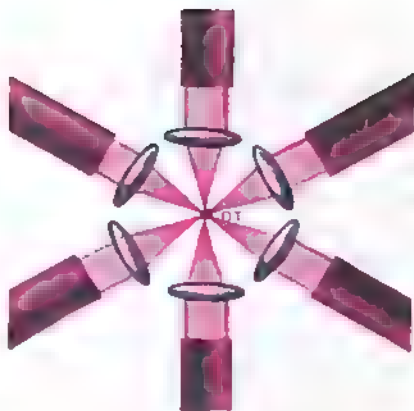
में वह अतिरिक्त ऊर्जा देगी। आकलन के अनुसार हर कौंध में इस ऊर्जा का मान 1 से 10 करोड़ जूल के बराबर होगा। एक ग्राम की मात्रा में ड्युटेरियम-ट्रीटियम का मिश्रण हीलियम में परिणत होकर इतनी ऊर्जा उत्सर्जित करता है, जितनी 20 टन पेट्रोल जलने में उत्सर्जित होती है।

जब वैज्ञानिकगण लेसरी तापनाभिकीय प्रयुक्ति का प्रारेख बनाना शुरू करते हैं, तो उनके सामने मुख्य समस्या होती है—अधिक बड़े दक्षता-गुणांक वाला शक्तिशाली लेसर बनाना। ऐसे लेसर में पंपन की ऊर्जा अधिकतम मात्रा में लेसर-विकिरण की ऊर्जा बननी चाहिए। अभी प्लाज्मा गर्म करने के लिए गैसीय विकिरक पिंड—कार्बन डाय-

चित्र 48 तापनाभिकीय रिएक्टर और लेसर द्वारा शृंखल तापनाभिकीय प्रतिक्रिया शुरू करने वाले अंतरिक्षी प्रतिकारी चलित्र का आरेख :
1. नाभिकीय ईंधन *DT*-बर्फ का प्रवेश, 2. लेसरी किरण को लेंस पर निर्दिष्ट करने वाला दर्पण, 3. विकिरण को बर्फ पर फोकस करने वाला लेंस, 4. राकेट का काय।

चित्र 49. तापनाभिकीय रिएक्टर में लेसर से प्रतिक्रिया शुरू करने वाले स्थावर विद्युत्केंद्र का आरेख :
1. नाभिकीय ईंधन के साथ बर्फ का पथ, 2. बर्फ को सुलगाने वाली लेसर-किरण, 3. सुलगाव के स्थल पर बर्फ, 4. द्रव लीथियम से भरा हुआ रिएक्टर का काय, 5. ताप-विनिमायक (तापनाभिकीय प्रतिक्रिया से उत्सर्जित ताप विद्युत्केंद्र की चर्खियों की ओर ले जाया जाता है), 6. लीथियम का संचार करने वाला पंप, 7. लीथियम के घूर्णन से बने भंवर के कारण उत्पन्न शंक्वाकार व्योम,
8. भापदायक ताप।
DT-ईंधन इसी शंकु में प्रविष्ट कराया जाता है। समय-समय पर ईंधन लेसर-किरणों से सुलगाया जाता है। तप्त लीथियम ताप-विनिमायक में जाता है।
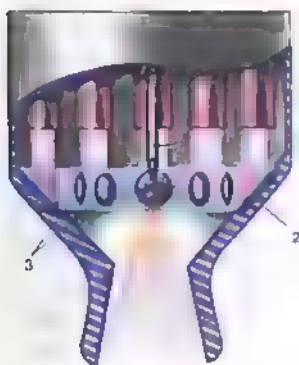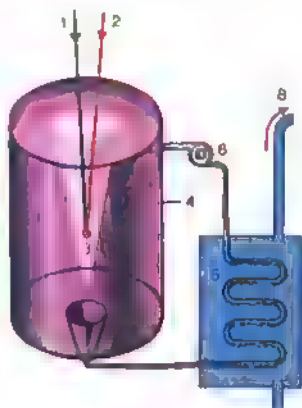
क्साइड गैस—वाला लेसर ज्यादा उपयुक्त है। ऐसा लेसर 10.6 µm तरंग-लंबाई वाला अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करता है।

दूरस्थ ग्रहों और सितारों तक उड़ने के लिए अच्छे से अच्छे रसायनिक ईंधन वाला चलित्र भी काम नहीं आयेगा। उदाहरण के लिए, प्लूटो पर जाने के लिए भी राकेट पर ईंधन का बहुत बड़ा भंडार रखना पड़ेगा। लेकिन लेसरी तापनाभिकीय चलित्र (चित्र 48) अंतरिक्ष में अतिदूर यात्राओं के लिए पर्याप्त उपयुक्त है। लेसर स्थिर विद्युकेंद्रों में भी ड्युटेरियम और ट्रीटियम जलाने के काम आ सकता है (चित्र 49)।

अतिदूरगामी राकेटों के तापनाभिकीय चलित्र और हाइड्रोजनी विद्युकेंद्र की भट्ठी को प्रकाशीय किरणों से कब चालू किया जा सकेगा?

अभी ठीक-ठीक तारीख बताना मुश्किल है। वैज्ञानिकगण कमोबेश रूप से विश्वस्त अनुमान ही दे रहे है। यह मान्यता है कि भविष्य में उद्योग को वैद्युत ऊर्जा शक्तिशाली लेसर-विद्युकेंद्रों से ही मिलेगी। यह भविष्यवाणी कहा तक सच है, यह समय आने पर ही पता चलेगा। पर आज यह स्पष्ट हो चुका है कि आदमी के सामने खड़ी ऊर्जिक समस्याओं के हल में लेसर एक शक्तिशाली साधन है।

होलोग्राफी की आयाम विषयक दुनिया. अब तक प्रकाशीय सूचनाओं को सुरक्षित रखने का मुख्य साधन फोटोचित्र है। नेताओं, अंतरिक्ष-यात्रियों, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं, कलाकृतियों तथा अनेक अन्य बातों को कैमरे से चित्रित किया जा सकता है। वैज्ञानिक फोटोचित्रों की सहायता से प्रयोग या उत्पादन संबंधी जटिल प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं, खनिजों का पता लगाते हैं, प्रत्याशित फसल की भविष्यवाणी करते हैं।

आज हम चित्र अधिकाशतः फोटोग्राफी (प्रकाशलेखन) में प्राप्त करते हैं। पंद्रह साल पहले फोटोग्राफी का कोई गंभीर प्रतियोगी नहीं

चित्र 50. लेसर के कार्य ।

था, लेकिन अब वस्तुओं का चित्र प्राप्त करने की एक नयी विधि उत्पन्न हुई है और बहुत तेजी से विकसित हो रही है; इसका नाम है **होलोग्राफी** (पूर्णलेखन)।

वस्तु का होलोग्राफिक चित्र उसके होलोग्राम (पूर्णलेख) में निहित होता है । होलोग्राम ऐसी ही भूमिका निभाता है जैसी कि फोटोग्राफी में निगेटिव की होती है । देखने में होलोग्राम डेवलप की हुई फोटो-प्लेट जैसा लगता है, जिस पर उभरे हुए चित्र का वस्तु की रूप-रेखा के साथ कोई मेल नही होता । यदि ऐसी प्लेट को खुर्दबीन से देखा जाये तो उसमे बारी-बारी से अंधेरी और प्रकाशमान पट्टियां दिखेंगी (यदि उसमें सरल आकृति की वस्तु चित्रित है)। जटिल वस्तुओं के चित्र की अंधेरे और प्रकाशमान क्षेत्रों से बनी दानेदार रचना होती है ।

होलोग्राम को तेज प्रकाश-पुंज से प्रकाशित करते ही वस्तु का रंगीन व्योम चित्र दिखने लगता है । प्लेट पर अंकित बेतरतीब रचना को प्रकाशित करने पर वस्तु द्वारा परावर्तित प्रकाश-तरंग की प्रसर-सीमाएं उस क्षण की तरह उपस्थित हो जाती है, जिस क्षण वस्तु का होलोग्राम लिया गया था । पुनर्निर्मित चित्र होलोग्राम के पीछे, प्रकाश-पुंज के साथ किसी कोण पर स्थित होता है ।

जादू इसमें ही सीमित नहीं है । होलोग्राम को टुकड़ो मे तोड़ा जा सकता है; प्रकाशित करने पर हर टुकड़ा वैसा ही चित्र देता है, जैसा पूरी प्लेट देती थी । दुर्लभ वस्तुओं और विश्व-विख्यात कलाकृतियों के होलोग्राम बनाये जा चुके हैं, ये अपने मूल रूप से जरा भी भिन्न नहीं होते, और सब की पहुंच मे आ सकते हैं ।

वैज्ञानिक अन्वीक्षण और उत्पादन पर तकनीकी नियंत्रण के लिए भी होलोग्राफी नयी संभावनाएं प्रस्तुत करती है ।

होलोग्राम में वस्तु के अलग-अलग लघु क्षेत्रों की पारस्परिक स्थितियां इन क्षेत्रों द्वारा परावर्तित किरणों के विलंब (एक-दूसरे की तुलना मे देर से पहुंचने) के अनुसार अंकित होती हैं। वस्तु के विभिन्न बिन्दुओं की दूरी दो प्रकाश-किरणों की तुलना द्वारा अंकित होती है। वस्तु से निकला हुआ प्रकाश-पुंज और एक दूसरा (अवलंबी) प्रकाश-पुंज फोटो-प्लेट पर निर्दिष्ट किये जाते हैं, जहां वे व्यतिकरण-चित्र बनाते हैं। व्योम के बड़े हिस्से में व्यतिकरण-चित्र सिर्फ संसक्त प्रकाश की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होता है। इसीलिए लेसरी संसक्त विकिरण के बिना होलोग्राफी का सच्चा विकास संभव नहीं था।

होलोग्राफिक अभिलेख. होलोग्राम कैसे अभिलेखित करते हैं? फोटो-प्लेट को दो संसक्त किरण-पुंजों से प्रकाशित करते हैं। उनमें से एक (1) को प्लेट पर लंब रूप से निर्दिष्ट करते हैं और दूसरे (1′) को कोण θ बनाते हुए (चित्र 51a)। इस स्थिति में प्रकाशीय दोलन प्लेट पर व्यतिकरण-पट्टियां बनायेंगे। प्लेट को डेवलप करने के बाद यह विवर्तक जाली का काम करने लगता है। इस जाली को इसके तल पर लंब रूप से आपतित संसक्त प्रकाश-पुंज (चित्र 51a में 1) से प्रकाशित करते हैं। पुंज का एक भाग बगैर अपनी दिशा बदले जाली को पार कर जायेगा; इसके अतिरिक्त समांतर किरणों के दो और पुंज उत्पन्न होंगे, जो जाली से उसके साथ क्रमशः θ और $-\theta$ कोण पर निकलेंगे। ये कोण ठीक उस कोण जैसे होंगे, जिस पर प्लेट को शुरू-शुरू में प्रकाशित किया गया था, और कोण θ पर निकले पुंज (1″) की तीव्रता वैसी ही होगी, जैसी इसी कोण पर शुरू-शुरू में आपतित कोण की थी (चित्र 52b)। यदि दूसरी तरह से कहें, तो फोटो-प्लेट ने याद कर लिया कि उस पर किस कोण से किस तीव्रता की किरण गिरी थी। यह पुरानी किरण ही नयी लंबवत किरण द्वारा नये सिरे से उत्पन्न होती है। लंबवत आपतित किरण को अवलंबी किरण कहते हैं।

चित्र 51a. होलोग्राम-लेखन का आरेख।

चित्र 51b. होलोग्राम से बिम्ब की प्राप्ति।
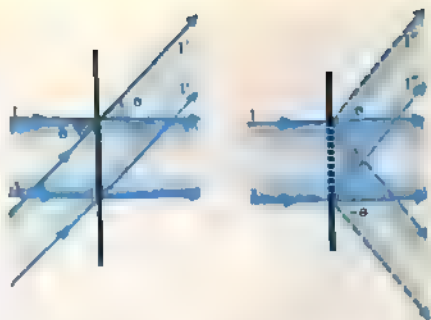
अवलंबी किरण की सहायता से आरंभिक प्रकाश-पुंज की पुनर्स्थापना की संभावना हमें बहुत दूर तक ले जा सकती है। यथा, संसक्त विकिरण की सहायता से फोटो-प्लेट पर समांतर प्रकाश-पुंज के लंब्धक ही नहीं, गुलाब की पंखुड़ियों, संगमरमर के खंभों या कट-ग्लास के गुलदस्ते से परावर्तित प्रकाश भी अभिलिखित किया जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे पुनर्स्थापित किया जा सकता है।

प्रकाशदायक या चमकदार वस्तु को हमेशा ही अलग-अलग चमकदार बिंदुओं से मिलकर बना हुआ मान सकते हैं। इसलिए यदि हम फोटो-प्लेट पर एक बिंदु का प्रकाश अभिलिखित करना सीख लें, तो जटिलतम वस्तु से उत्सर्जित प्रकाश भी अभिलिखित कर सकेंगे। चमकदार बिंदु का प्रकाश फोटो-प्लेट पर शंकु के रूप में आपतित होता है (चित्र 52a)। इस शंकु जैसे पुंज को अति संकीर्ण छल्लों में विभाजित करते हैं ताकि किरणों के अपसारण की व्यवहारतः उपेक्षा की जा सके। इसका मतलब है कि हर संकीर्ण पुंज को हम समांतर किरणों का पुंज मान सकते हैं।

चित्र 52. बिंदु-वस्तु K (a) का होलोग्राम प्राप्त करना। होलोग्राम को आधारी लेसर-किरणों से प्रकाशित करके बिंदु K का बिम्ब प्राप्त करना (b)।

फोटो-प्लेट का हिस्सा A_1B_1 कोण ϕ_1 से आपतित पुंज को स्मरण कर लेगा, हिस्सा A_2B_2—कोण ϕ_2 से आपतित पुंज को (चित्र 52b)। कोण जितना ही बड़ा होगा, विवर्तन-पट्टियां उतनी ही अधिक होंगी और इसलिए प्लेट की इकाई लंबाई पर उतनी ही अधिक रेखाएं मिलेंगी। इस तरह से प्रकाशित करने के बाद यदि प्लेट को डेवलप किया जाये और फिर उसे संसक्त विकिरण के अवलंबी पुंज से प्रकाशित किया जाये तो ठीक वैसा ही ज्योति-प्रवाह उत्पन्न हो जायेगा, जैसा डेवलप करने के पहले प्लेट पर बिंदु-स्रोत से आपतित हो रहा था। इस प्रकार हम वस्तु के बिंदुवत लघु क्षेत्र से परावर्तित ज्योति-पुंज के अभिलेख की समस्या हल कर लेते हैं। पूरी वस्तु द्वारा परावर्तित ज्योति-प्रवाह को प्लेट वस्तु के लघु क्षेत्रों—उत्सर्जित या परावर्तित करने वाले अलग-अलग बिंदुओं—से निकले प्रवाहों के योग के रूप में स्मरण कर लेगी।

प्लेट पर पट्टियां बहुत जटिल होंगी और वस्तु की तरह बिल्कुल ही नहीं दिखेंगी, ठीक वैसे ही, जैसे नियमित पट्टियों का विन्यास समांतर पुंज की तरह नहीं होता।

मान लें कि ऐसे होलोग्राम से अंकित प्लेट टूट जाती है। पर इस प्लेट का टुकड़ा भी अवलंबी प्रकाश के प्रभाव से पूरा बिंब पुनर्स्थापित कर देगा। यह चित्र 52 से स्पष्ट हो सकता है। बिंदु K का बिंब प्लेट के हिस्से A_1B_1 और A_2B_2 परस्पर स्वतंत्र रूप से उत्पन्न करते हैं। यह बात और है कि होलोग्राम का आकार छोटा होने पर बिंब की क्वालिटी खराब हो जाती है।

अवलंबी प्रकाश-पुंज वस्तु का व्योमधर्मी बिंब पुनर्स्थापित करता

a
K
K
K'
φ1
A1
B1
φ2
A2
B2
b
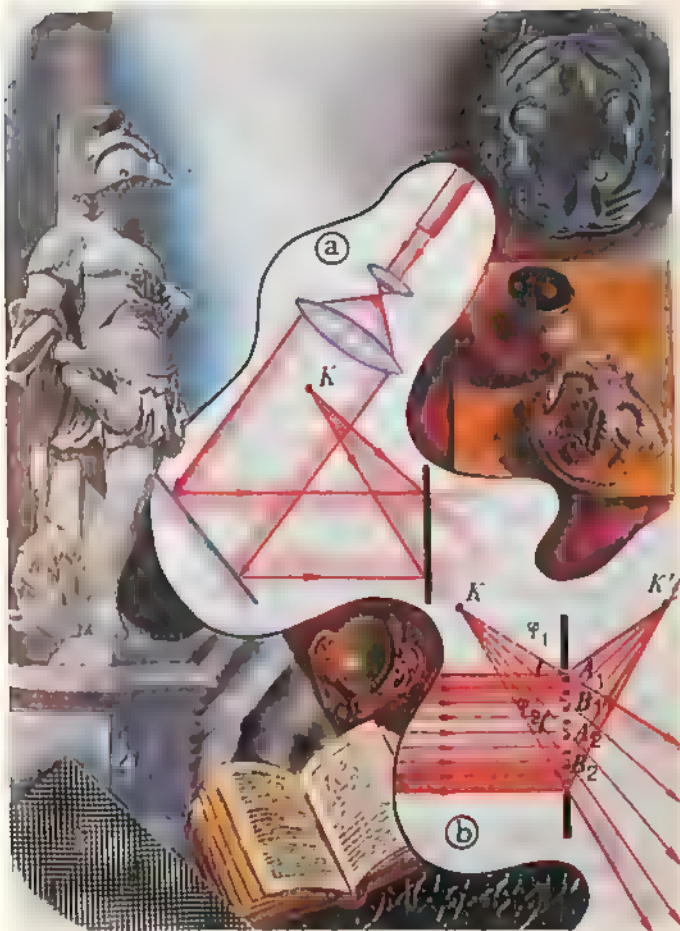
है, जो व्यौम चित्रों से बिल्कुल भिन्न होता है। ये चित्र व्यौम बिंब का सिर्फ भ्रम उत्पन्न करते हैं। यथा, साधारण व्यौम चित्र को भिन्न कोणों से देखने पर हमें वस्तु के नये विवरण नहीं दिखेंगे। पर होलोग्राफिक व्यौम चित्र की सहायता से हम वस्तु को सब ओर से देख सकते हैं, यहां तक कि उसके पीछे से भी झांक सकते हैं और उसके पीछे जो कुछ है वह भी दिखायी देगा।

व्यौम होलोग्राम भी बनाया जा सकता है (फोटो-प्लेट पर समतल होलोग्राम मिलता है)। इस स्थिति में संसक्त पुंज का व्यतिकरण-चित्र इमल्शन की मोटी परत मे अंकित होता है। व्यौम होलोग्राम वास्तविक दुनिया को समतल होलोग्राम की तुलना में कहीं अधिक पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित करता है। वस्तु के बिंब का बोध वस्तु के बोध से जरा भी भिन्न नही होता। वस्तु का बिंब देखने वाला व्यक्ति वस्तु की उपस्थिति के आभास का एक अनोखा प्रभाव अनुभव करता है।

होलोग्राफी से कई आश्चर्यजनक संभावनाएं उत्पन्न होती हैं। यदि होलोग्राम के रूप में फिल्म बनायी जाये, तो असाधारण रूप से उच्च कोटि का व्योम चलचित्र प्राप्त होगा।

कुछ ही समय बाद वैज्ञानिक तथा इंजीनियर लोग मिलकर बड़ी-बड़ी दूरियों पर होलोग्राम प्रेषित करने वाले उपकरण बना लेंगे। व्यौम-टेलीविजन-प्रोग्राम प्रसारित होंगे। हजारों किलोमीटर दूर की घटना कमरे में पहुंच जायेगी। न सिर्फ सिनेमा और टेलीविजन का ही रूप बदलेगा, बल्कि पुस्तकालयों का भी कायापलट हो जायेगा। होलोग्राम की एक फिल्म पर सैकड़ों पृष्ठ अंकित किये जा सकेंगे।

आश्चर्यजनक रूपांतरण. न्यूटन के जमाने से ही माना जा रहा था कि पारदर्शक द्रव्य से गुजरते वक्त प्रकाश की दोलनावृत्ति में परिवर्तन नहीं होता।

द्रव्य मे प्रकाश-पुंज का आचरण पूरी तरह से उसकी आवृत्ति और

चित्र 53a. शक्तिशाली लेसर किरणों का क्वार्ट्स के पट्टे से गुजरना।
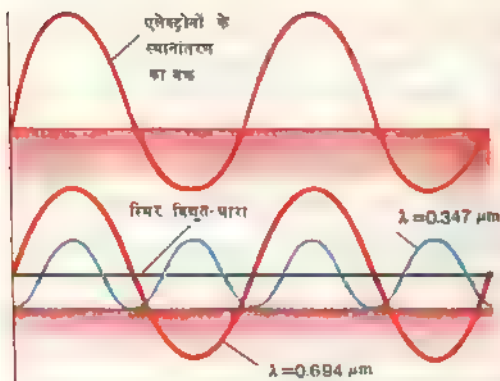
चित्र 53b. स्थानांतरित एलेक्ट्रोन दोलन आरम्भ कर देते हैं, आपतित प्रकाश वाली आवृत्ति तथा दुगुनी आवृत्ति का विकिरण उत्पन्न होता है। इन दोलनों का संयोजन एलेक्ट्रोनों के स्थानांतरण का वक्र बनाता है। एलेक्ट्रोनों के असममित स्थानांतरण से प्रकाशकीय विकिरण के अतिरिक्त स्थिर वैद्युत धारा भी उत्पन्न होती है, यदि एलेक्ट्रोन प्रकाशीय क्षेत्र में सममित रूप से स्थानांतरित होते हैं, तो आपतित प्रकाश की दोलन-आवृत्ति से तिगुनी तीव्र आवृत्ति का प्रकाश उत्पन्न हो सकता है।

माध्यम के अपवर्तनांक द्वारा निर्धारित होता है (यदि हम प्रकाश के ध्रुवण से संबंधित संवृत्तियों को छोड़ दें)। लेकिन यदि क्वार्ट्स के पट्टे (प्लेट) को रूबी-लेसर के शक्तिशाली ज्योति-प्रवाह से प्रकाशित किया जाये, तो क्वार्ट्स से निकली हुई किरण में लेसर के लाल प्रकाश की आवृत्ति के अतिरिक्त नीले प्रकाश की आवृत्ति भी मिली होगी (यह

आप किरण को त्रिपार्श्व पर निर्दिष्ट करके देख ले सकते हैं)। इस नीले प्रकाश की आवृत्ति 0.347μm होगी (चित्र 53a)।

यह नया विकिरण कहा से आया? बात यह है कि द्रव्य के साथ प्रकाश की व्यतिक्रिया भी प्रकाश की आवृत्ति में परिवर्तन का कारण हो सकती है। धरातल पर अच्छे मौसम में सौर किरण के वैद्युत क्षेत्र की तीव्रता करीब 1000 V/m होती है। वैद्युत क्षेत्र की इतनी छोटी तीव्रता परमाणु-अभ्रों के बहुत क्षीण रूप में संबद्ध एलेक्ट्रोनो को ही खिसका सकती है। प्रकाश के प्रभाव से द्रव्य मे एलेक्ट्रोनों का दोलन होने लगता है, जिसकी आवृत्ति वैसी ही होती है जैसी आपतित प्रकाश-किरण की। ये दोलन उसी आवृत्ति का द्वितीयक प्रकाश-विकिरण उत्पन्न करते हैं। इसीलिए द्रव्य से गुजरते वक्त सूर्य का प्रकाश अपने स्पेक्ट्रम में कोई नयी आवृत्ति नहीं देता।

लेकिन लेसर-किरणों को संसृष्ट करने वाले लेंस की नाभि पर प्रकाश-तरंग के वैद्युत-क्षेत्र की तीव्रता एक अरब वोल्ट प्रति सेंटीमीटर तक पहुंच सकती है। इतनी शक्तिशाली प्रकाश-तरंग बाह्य परमाणु-अभ्रों के एलेक्ट्रोनों को खिसकाती ही नही है, वह कहीं अधिक महत्व-पूर्ण परिवर्तन ला देती है। ऐसे क्रिस्टलो मे, जिनका कोई सममित केंद्र नहीं होता, एलेक्ट्रोन एक दिशा में अधिक स्थानांतरित होते हैं (बनिस्बत कि दूसरी दिशा में; चित्र 53b)। स्थानांतरित एलेक्ट्रोनों की स्थिति अब आपतित तरंग के रूप की नकल नहीं करती। इस तरह से स्थानांतरित एलेक्ट्रोन अपने दोलन से एक नहीं, दो प्रकाश-तरंगें उत्पन्न करते हैं: एक आपतित प्रकाश की आवृत्ति वाली और दूसरी—इसकी दुगुनी आवृत्ति वाली। साथ-साथ स्थायी वैद्युत धारा भी उत्पन्न हो जाती है! यह भी संभव है कि एलेक्ट्रोन दोनों ओर समान रूप से स्थानांतरित हों, पर इस स्थिति मे भी उनका स्थानांतरण आपतित प्रकाश-तरंग की नकल नहीं करेगा।

चित्र 54 की स्प्रिंगों को देखें। विशेषताओं के अनुसार वे बिल्कुल

चित्र 54. परमाणु के एलेक्ट्रोनों पर लेसरी विकिरण का प्रभाव।
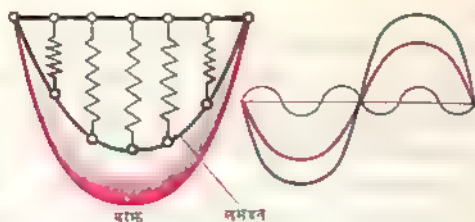
समान हैं। मान लें कि प्रथम स्प्रिंग से 5 kg का बोझ लटकाया गया है, दूसरी स्प्रिंग से 8.7 kg का और तीसरी से 10 kg का। बोझ के कारण पहली स्प्रिंग 5 cm लमड़ती है, दूसरी—सिर्फ 8 6 cm, हालांकि उससे 8.7 kg का बोझ लटक रहा है। तीसरी स्प्रिंग 10 cm के बजाय सिर्फ 9.5 cm लमड़ती है। लमड़नें उस नियम का अनुसरण नहीं कर रही हैं, जिनके अनुसार बोझों के भार चुने गये हैं : भार उनके द्रव्यमानों के साथ समानुपाती हैं। क्रियाशील बल को बढ़ाने पर एक ऐसा क्षण आता है, जब लमडन के विरुद्ध प्रतिरोध अधिक होने लगता है। परमाणु में एलेक्ट्रोनों के साथ भी यही होता है।

एलेक्ट्रोनों को परमाणु-नाभिकों के साथ स्प्रिंगों द्वारा जुडा हुआ माना जा सकता है। वास्तविकता में वे बेशक परमाणु के वैद्युत बलों द्वारा जुड़े होते हैं, पर इन बलों की क्रिया स्प्रिंग जैसी ही होती है। इसीलिए, जब प्रकाश-तरंग के वैद्युत क्षेत्र की तीव्रता अधिक होती है, तो बोझों के स्थानांतरण की तरह ही एलेक्ट्रोनों के स्थानांतरण आपतित तरंग के रूप की नकल नहीं करते। चित्र 54 मे हम देखते हैं कि एलेक्ट्रोनों की ऐसी स्थानांतरित लडी को दो ज्या-वक्रों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है : एक की तरंग-लंबाई आपतित प्रकाश की तरह है और दूसरे की—तिगुनी छोटी है। कैल्साइट पर रूबी-लेसर की शक्तिशाली किरण डालकर तरंग-लंबाई 0.2314 μm (अर्थात रूबी-

लेसर से तिगुनी कम तरंग-लंबाई) वाला विकिरण प्राप्त किया जा सकता है।

पर यदि तीव्र लेसर-किरण द्रव्य में किसी अन्य प्रकार से प्रसरण करती है, तो वह द्रव्य में अपवर्तित भी अन्य प्रकार से होती है; वह पिंड की सतह से उस तरह परावर्तित भी नहीं होती, जिस तरह सामान्य परिस्थितियों में : इसमें अधिक ऊर्जा वाले फोटोन उत्पन्न होते हैं। सामान्य शक्ति का प्रकाश अपने से होकर गुजारने वाले द्रव्य शक्तिशाली पुंज के लिए अपारदर्शक हो जाते हैं। ये सभी संवृत्तियां मिलकर भौतिकी के एक नये विभाग को जन्म देती है, जिसका नाम **अरैखिक प्रकाशिकी** पड़ा है।

प्रकाशिकी का भविष्य

प्रकाश का विज्ञान. ज्योति-प्रवाह के रहस्यो पर कई संततियों के वैज्ञानिकगण मनन करते आ रहे हैं। प्रकाशीय संवृत्तियों को समझाने के लिए एक से एक अनोखे सिद्धांत रचे गये। उनकी जांच के लिए सूक्ष्म और परिष्कृत प्रयोग किये गये...

प्रकाशिकीय उपकरण सिर्फ प्रकाश के बारे में ही सूचनाएं नहीं देते थे, उनसे व्यवहारतः सभी विज्ञानों के विकास में सहायता मिली है। बाह्य दुनिया के बारे में अधिकांश सूचनाएं हमारे मस्तिष्क को दृष्टि के माध्यम से ही मिलती हैं। प्रकाशिकीय उपकरणो और विधियों की सहायता से प्रकृति के ऐसे रहस्यों का उद्घाटन हो सका, जिन्हें प्रकाशिकी के बिना समझना असंभव था।

सरल रेखा पर प्रकाश के गमन का नियम प्राचीन यूनानियो को भी ज्ञात था। न्यूटन ने श्वेत प्रकाश को रंगीन घटको में विभक्त करके सिद्ध किया कि वह एक जटिल रंग है। प्रकाश की तरंगी प्रकृति के बारे में हुईजेंस की मान्यता को फ्रेनेल ने बहुत अच्छी तरह से विकसित किया। आधुनिक सैद्धातिक धारणाओं का जन्म मैक्सवेल के प्रतिभापूर्ण कार्यों से हुआ, जिन्होने सिद्ध किया कि प्रकाश विद्युत्चुंबकीय ऊर्जा का प्रवाह है। प्रकाशीय संवृत्तियों के अध्ययन ने सैद्धातिक भौतिकी के विकास को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। वैज्ञानिकों ने तप्त पिंडों और वाष्पों तथा गैसों के लाइनदार स्पेक्ट्रमों के अध्ययन से **क्वांटमी**

यांत्रिकी को जन्म दिया, जो पूरी आधुनिक सैद्धांतिक भौतिकी का आधार है ।

विज्ञान के रूप में क्वांटमी यांत्रिकी की उत्पत्ति प्रकाशीय संवृत्तियों के अध्ययन के सिलसिले में हुई थी; वह सिर्फ परमाणु की सरचना ही नहीं, परमाणु-नाभिकों का गठन, उनकी संरचना, रश्मिसक्रिय क्षय, नये प्राथमिक कणों की उत्पत्ति, आदि, जैसी संवृत्तियों को भी समझाती है । इसके आधार पर ही ठोस पिंड और द्रवों के सिद्धात प्रतिपादित किये गये हैं ।

हमारे समय में प्रकाश-ऊर्जा तकनीक में भी बहुत बडी भूमिका निभा रही है । प्रकाशीय मापों, स्पेक्ट्रमी विश्लेषण, अन्वीक्षण की होलो-ग्राफिक विधियों का आज बहुत बड़ा महत्व है ।

प्रकाशिकी के विकास की भावी उपलब्धियों को लेसरों के उपयोग के साथ संबंधित किया जाता है । कोई पंद्रह वर्ष पहले लेसर-किरण की शक्ति बहुत कम थी, पर आज वह तेजी के साथ इस्पात की चादर काट सकती है, सुरंग या खान बनाने के लिए कठोर शैलपटलों को तोड़ सकती है, खराब मौसम में हवाई जहाज उतारने में सहायक होती है, वस्तुओं के अभूतपूर्व पूर्णता के साथ प्रतिबिंब बनाती है, किसी स्थान का मानचित्र बना सकती है (चित्र 50) ।

लेसर ने मापविद्या और भूगणित में प्रकाशिकीय विधियों के उपयोग को विस्तृत किया है । लेसर की तीक्ष्ण किरण रेडियोटेलीस्कोप या हवाई जहाज बनाने वाले उपस्करों जैसे जटिल व वृहत संयंत्रों में पुर्जों की सही स्थिति निर्धारित करती है, सुरंग के स्वचालन निर्माण को नियंत्रित करती है, हवाई अड्डों के उड़ान-पट्टों का पार्श्व-आरेख तैयार करती है । लेसर से मोटरगाड़ियों की बौडी-वेल्डिंग की जा रही है, टर्बाइन के पंखुड़ों में छेद किये जा रहे हैं, कांच और चीनी मिट्टी के सामान तराशे जा रहे हैं, परिवेश के प्रदूषण पर नियंत्रण रखा जा रहा है ।

'लेसर-प्राविधि' जैसी अवधारणा भी उत्पन्न हुई है : संसक्त प्रकाशीय विकिरण रसायनिक उत्पादन-प्रक्रिया को त्वरित करता है, आधुनिक रेडियो-एलेक्ट्रोनिकी के लिए बड़े आकार के क्रिस्टल बनाता है, समस्थों के विभाजन मे सहायक होता है ।

अंतरिक्षी संचार मे भी लेसर का भविष्य बहुत अच्छा है । लेसर-पुंज अब सौर प्रणाली के दूरतम ग्रह तक सूचनाएं भेज रहा है, नेप्चून और प्लुटोन के क्षेत्र में अंतरिक्षी उपकरणों का संचालन कर रहा है । भविष्य में शायद लेसर से ही अंतरातारक सपर्क बनाया जा सकेगा । यह सौर मंडल से बाहर के अंतरिक्षी पिंडो के साथ संचार-माध्यम होगा ।

लेसरी राकेट. वह दिन भी शायद दूर नहीं है, जब शक्तिशाली ज्योति-प्रवाह हमारे हाथ लग जायेगा । तब हम ऐसी समस्याएं हल कर सकेंगे, जिनके बारे मे हम अभी सपने ही देखते हैं ।

मान लें कि अंतरिक्ष में उड़ने को तैयार राकेट एक पेंसिल के बराबर है । इस पैमाने के अनुसार राकेट का उपयोगी आयतन, अर्थात अंतरिक्ष-यान का आयतन, पेंसिल की नोक के बराबर होगा । आधुनिक राकेट जिस बोझ को ढो सकता है, खुद उससे कई गुना ज्यादा भारी होता है । उपयोगी बोझ और वाहक राकेट के द्रव्यमानो का अनुपात कैसे बढ़ाया जाये ?

शक्तिशाली लेसर-पुंज की क्रिया से द्रव्य इतनी तेजी से वाष्पित होता है कि गर्म वाष्प की धार पर्दे से टकराकर परास्वनिक वेग से दूर होती है । इससे प्रतिकारी बल उत्पन्न होता है, जो आधुनिक प्रतिकारी इंजन के प्रति ग्राम ईंधन से प्राप्त बल की अपेक्षा कई गुना अधिक होता है । और, ईंधन ही तो आज के राकेट के भार का मुख्य कारण है ! कलन दिखाते हैं कि लेसर-इंजन के उपयोग से अंतरिक्ष-यान और वाहक राकेट के भार संमेय होंगे ।

अभी ऐसा लेसर नहीं है, जिसकी शक्ति भारी स्पुतनिक को कक्ष पर भेजने के लिए पर्याप्त हो। राकेटी लेसर से क्या लाभ होता ?

पृथ्वी के निकटवर्ती कक्षों पर भारी बोझ भेजे जा सकते, वहां ऐसे संयंत्र स्थापित किये जा सकते, जिनका अभी हम सपना भर देखते हैं। यथा, कक्षीय वेधशाला स्थापित की जा सकती है, जिसमें तारक प्रकाश की संरचना का अध्ययन करने के लिए शक्तिशाली दूरबीन और अन्य उपकरण लगे होंगे। ऐसी वेधशाला की दूरबीन के सामने वातावरण नहीं होगा, इसलिए विश्लेषक उपकरणों तक पहुंचते समय अंतरिक्षी प्रकाश वातावरण से विकृत नहीं होगा। अभी की दूरबीनें ऊंचे पहाड़ों पर लगाने के बावजूद भी वे सिर्फ विशेष अच्छी परिस्थितियों में ही पूरी शक्ति से काम कर सकती हैं। बाकी समय वातावरण का द्रव्य तारक प्रकाश में निहित सूचनाओं का रूप बदल देता है। इसीलिए अंतरिक्षी वेधशाला ब्रह्मांड के अनेक रहस्यों का उद्घाटन कर सकती है, अज्ञात तारों और नीहारिकाओं की खोज कर सकती है, बहुत दूर स्थित अंतरिक्ष-पिंडों की संरचना निर्धारित कर सकती है।

लेसर-औजिकी. यदि दूरस्थ ग्रहों, जैसे नेप्चून या प्लुटोन तक उड़ने की बात लें तो वाहक राकेट में तापनाभिकीय ईंधन से चलने वाला इंजन ही लगाना होगा। लेसर का प्रकाश प्लाज्मा को उस तापक्रम तक गर्म करेगा, जिसमे तापनाभिकीय प्रतिक्रिया शुरू हो सके। तापनाभिकीय संश्लेषण से उत्सर्जित होने वाली नाभिकीय ऊर्जा आदमी को सौर मंडल में दूर-दूर तक सैर करा सकती है।

वैज्ञानिकगण अभी से ही ऐसी मशीन बनाने की सोच रहे हैं, जिसमें यांत्रिक ऊर्जा उच्च दक्षता-गुणांक वाले लेसरी विकिरण में परिणत हो सकेगी। इससे संकीर्ण चैनलों के सहारे ऊर्जा—तार या नली के बिना ही—विमानों या अंतरिक्षी उपकरणों तक पहुंचा करेगी।

लेसरी ऊर्जा-लाइन से जुड़े हुए हवाई लाइनर भारी-भारी बोझ ढो सकेंगे। पेट्रोल भरने की समस्या ही खत्म हो जायेगी।

क्वांटमी उत्प्रेरक. पेड़-पौधों के पत्तों में प्रकाश की सहायता से महत्वपूर्ण रसायनिक प्रक्रियाएं संपन्न होती हैं। इन प्रक्रियाओं के उत्पाद ही पृथ्वी पर सभी जीवों का अस्तित्व बनाये रखते हैं। हम पौधों या शाकाहारी पशुओं से अपना पोषण करते हैं और इसमें दरअसल क्लोरोफील के गुण का ही उपयोग करते हैं, जिसकी सहायता से वह सूर्य का प्रकाश अवशोषित करता है। ये प्रतिक्रियाएं फोटोग्राफी तथा अन्य रसायनिक परिवर्तनों का आधार हैं; इन्हें फोटो-रसायनिक प्रतिक्रिया कहते हैं। इनमें रसायनिक प्रतिक्रियाओं का संचालन प्रकाशीय ऊर्जा द्वारा होता है। लेसर के आविष्कार ने वैज्ञानिकों को रसायनिक प्रतिक्रियाओं के संचालन का एक सूक्ष्म औजार दिया है। यथा, नियत ऊर्जा से युक्त क्वांटमों वाला लेसर-प्रकाश सिर्फ उन अणुओं को उद्दीप्त कर सकता है, जिनमें साधारण हाइड्रोजन होता है, लेकिन यदि ठीक वैसे ही अणुओं में हल्के हाइड्रोजन की जगह भारी ड्युटेरियम जुड़ा होगा तो उन्हें लेसर का प्रकाश प्रभावित नहीं करेगा। उद्दीप्त अणु विशेष रूप से चुने गये द्रव्य के साथ प्रतिक्रिया शुरू करते हैं और अवसादित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप घोल ड्युटेरियम से सांद्रित हो जाता है। अणुओं की दोलन-आवृत्ति के साथ ठीक-ठीक समंजित किया हुआ लेसरी विकिरण रसायनिक विधियों से हाइड्रोजन-समस्थों को अलग करने का रास्ता खोलता है। हालांकि साधारण रसायनिक प्रतिक्रियाओं में अणु चाहे साधारण हाइड्रोजन से युक्त हों या ड्युटेरियम से, उनका आचरण बिल्कुल एक जैसा होता है। मतलब यह है कि लेसर का प्रकाश रसायनविदों का ऐसे द्रव्य अलग करने में सहायक होता है, जो रसायनिक आचरण के अनुसार लगभग समान होते हैं।

लेसर-प्रकाश अणुओं में आवश्यकतानुसार नियत अनुबंधों को तोड़ सकता है और इस स्थिति में प्रतिक्रिया बिल्कुल दूसरी तरह की होगी, बनिस्वत कि द्रव्यों को गर्म करने पर, जब अणु तापीय गति के कारण प्रतिक्रिया करते हैं।

लेसर-रसायन भविष्य का रसायन है। इसके विकास से जटिल जैव द्रव्यों का संश्लेषण सरल हो जायेगा, नयी तरह के पेंट प्राप्त होंगे, अधिक कारगर दवायें बनेंगी।

प्रकाशीय कलनक- हमारे युग में प्राविधिक प्रक्रियाओं का संचालन कलनक मशीनें करती हैं। वे लेखा-जोखा रखती हैं, नियंत्रण का काम करती हैं, स्पुतनिक की उड़ान में आवश्यक सुधार करती हैं, प्रकाशिक तंत्रों और पुलों का निर्माण-व्यय कलन करती हैं। जटिल प्रश्नों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। काम में सफलता के लिए इन मशीनों की चाल तेज करनी पड़ती है।

वर्तमान समय में इंजीनियर लोग कंप्यूटर से प्रति सेकेंड दस करोड़ संक्रियाएं संपन्न कराने की कोशिश में लगे हैं। वे नयी अर्ध-चालकीय बैटरियों की खोज कर रहे हैं, ट्रांजिस्टर-आरेख विकसित कर रहे हैं। फिर भी जो क्षिप्रतम मशीनें होंगी, उनका आधार लेसर-प्रयुक्ति ही होगी। प्रकाशिक कलनक मशीनें एक सेकेंड में एक अरब से भी अधिक संक्रियाएं संपन्न कर सकती हैं! इन मशीनों में स्मृति भी प्रकाशिक होगी, सूचनाएं होलोग्राफिक विधि से अंकित की जायेंगी। छोटी-सी प्लेट (10×10 cm^2) पर होलोग्राफी से दस लाख पृष्ठ अभिलिखित किये जा सकते हैं।

होलोग्राफी, प्रकाशिक कलनक मशीनें, लेसरी तापनाभिकीय संश्लेषण, लेसर-रसायन तथा ज्योति-प्रवाह के अनेक अन्य उपयोगों से भविष्य में और अधिक ऊर्जा प्राप्त हो सकेगी, उसका खर्च युक्तिसंगत रूप से होगा, विश्व का और भी गहन ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

ब्लादीस्लाव इवानोविच कुज्नेत्सोव, पी. एच-डी., वावीलोव राज्य प्रकाशिकी-संस्थान में विज्ञानकर्मी हैं।

आपका जन्म 1928 में हुआ था, 1951 में उल्यानोव लेनिन विद्युतकनीकी संस्थान, लेनिनग्राद, में अध्ययन समाप्त किया।

आप जल और वातावरण में प्रकाशिकीय संवृत्तियों के विशेषज्ञ हैं, प्रकाश-प्रकीर्णक माध्यमों के अध्ययन के लिए कई मौलिक प्रकाशिकीय उपकरणों के निर्माता हैं। व्ला. कुज्नेत्सोव ने धुंधले माध्यम में प्रकाश-वितरण के सैद्धांतिक आधार की खोज की है।

ISBN 5-03-000306-1